॥ श्रीधन्वन्तरये नमः ॥

वैद्यसम्मेलन-पत्रिका

निखिलभारतवर्षीयवैद्यसम्मेलनकी

द्वैमासिकी मुखपत्रिका

चतुर्थ वर्ष } पौष-चैत्र सं० १९७४ वै० { २, ३ संख्या

विषय-सूची ।

श्रीकिशोरीदत्त शास्त्री, }
श्रीयादवजी त्रीकमजी आचार्य । } सम्पादक

२)] [सभासदोंको मुफ़

॥ श्रीधन्वन्तरये नमः ॥

वैद्यसम्मेलन-पत्रिका

निखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनकी स्थायीसमिति
और आयुर्वेदविद्यापीठकी ओरसे प्रकाशित ।

चतुर्थ वर्ष } पौष-चैत्र सं० १९८४ वै० { २, ३ संख्या

उन्नाव ज़िला सम्मेलन ।

संयुक्त प्रान्तने निखिलभारतवर्षीय वैद्यसम्मेलनको पुनरुज्जीवित कर चलाया, बढ़ाया और प्रभावशाली बनाया, यही नहीं आरम्भमें इस प्रान्तमें कई आयुर्वेदिक सभाएँ भी स्थापित हुईं । किन्तु इसके बाद इस प्रान्तके आयुर्वेदिक कार्योंकी परम्परा कुछ रुकी सी रही । उधर विहार प्रान्तने सबसे पहले अखाड़ेमें उतर कर प्रान्तिक सम्मेलन किया । उसके पश्चात् बङ्गाल, मद्रास, आन्ध्र, कर्नाटक, प्रभृति प्रान्तोंमें भी प्रान्तिक वैद्यसम्मेलन हुए । बम्बई प्रान्त भी बीचमें अपनेको तैयार बताता है । और वहांके सतारा ज़िलेने ज़िला सम्मेलन कर नयी कल्पना वैद्योंके सामने रखी है । अब संयुक्त-प्रान्तने भी आगे पैर बढ़ाया है । गत वसन्तपञ्चमीके दिन उन्नावमें उन्नाव जिलेके वैद्यसम्मेलनका प्रथम अधिवेशन हुआ ।

कल्पना शीघ्र हुई, इसलिये यद्यपि वैद्योंकी बहुत बड़ी संख्या उपस्थित न थी, तथापि उन्नाव ज़िलेके बहुतसे वैद्य और कुछ समीपी कानपुर और लखनऊके वैद्य इकट्ठे हुए थे। सबसे पहले पण्डित रघुवंश शास्त्रीजीने मङ्गलाचरण किया और फिर स्वागत-कारिणीके सभापति बाबू प्रयागनारायण जी वकीलने स्वागतका सम्भाषण किया, जिसमें आयुर्वेदके विषयमें एक खासा व्याख्यान था। प्रस्ताव, अनुमोदन और समर्थन होने पर उन्नाव ज़िलेके सनघर ग्राम निवासी पण्डित महादेवप्रसाद जी दीक्षितने सभापतिका आसन ग्रहण किया। आपने प्रारम्भिक वक्तृता दी और फिर रुग्णता के कारण अपना लिखा हुआ भाषण स्वयं न पढ़ पं० देवकृष्णजीके द्वारा सुनवाया। सब मिलकर दश प्रस्ताव स्वीकृत हुए। आयुर्वेद के उत्कर्षके लिये और आयुर्वेद पर लोगोंकी श्रद्धाभक्ति बढ़ानेके लिये ज़िलेमें सम्पूर्ण वैद्य और आयुर्वेद प्रेमी मिल कर उद्योग कर सकें, इसलिये ज़िलेकी एक स्थायी कमिटी बनायी गयी, जिसका भार बाबू प्रयागनारायण, पं० विश्वम्भरनाथ वाजपेयी, पं० सूर्यप्रसाद वाजपेयी और पं० रामदयालु जी अवस्थी पर सौंपा गया। दूसरे प्रस्तावमें उन्नावके डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपलिटीसे आग्रह किया गया कि एक एक वैद्यकी नियुक्ति की जाय जो आयुर्वेदिक चिकित्सा द्वारा रोगियोंकी सँभाल करें। तीसरे प्रस्तावमें विष-उपविषकी प्राप्तिके लिये प्रान्तिक सरकारसे नियमोंमें सुधार करने और बिक्रीकी दर निश्चित करनेके लिये प्रार्थना की गयी। चौथे प्रस्तावमें प्रान्तिक सरकारसे प्रार्थना की गयी कि अष्टाङ्ग आयुर्वेदकी शिक्षा देनेके लिये एक आयुर्वेदिक कालेजकी प्रतिष्ठा की जाय और लखनऊके मेडिकल कालेजमें आयुर्वेदकी शिक्षाका प्रबन्ध किया जाय। पांचवें प्रस्तावमें बनारस संस्कृत कालेजमें आयुर्वेदिक विभाग खोलनेके विषयमें प्रार्थना की गयी। छठे प्रस्तावमें घूम कर दवा करनेवाले डाक्टरोंकी तरह वैद्योंकी भी नियुक्ति करनेके लिये प्रार्थना की गयी। सातवें प्रस्तावमें कहा गया कि जिस प्रकार बंगाल और मद्रासके वैद्य "वैद्यरत्न" पदवीसे भूषित किये गये हैं उसी तरह इस प्रान्तके वैद्योंको भी पदवी मिलनी चाहिये। प्रस्ताव पास हुआ कि संयुक्त-प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन करनेका यथासम्भव शीघ्र प्रबन्ध करना

चाहिये। एक प्रस्तावमें कहा गया कि ये प्रस्ताव यथायोग्य स्थानोंमें भेजे जावें।

उन्नावकी हिन्दू पाठशालाके अधिकारियोंने स्वीकार किया कि वे अपनी पाठशालामें आयुर्वेदकी शिक्षाके लिये एक विभाग रखते हैं और प्रत्यक्ष निदान और चिकित्साकी शिक्षाकी सुविधाके लिये एक धर्मार्थ औषधालय भी खोलते हैं। इसके लिये उन्हें धन्यवाद दिया गया। जब तक वैतनिक योग्य वैद्य न मिले तब तक पं० प्रभाशंकर जी वैद्यने इस विभागमें काम करना स्वीकार किया और लखनऊके रामनारायण मिश्र, कानपुरके पं० किशोरीदत्त शास्त्री, पं० रामेश्वर मिश्र शास्त्री और पं० रघुवरदयालु शास्त्री तथा चमरौली उन्नावके पं० सूर्यप्रसाद वाजपेयी वैद्यराजोंने उक्त हिन्दू-औषधालय और पाठशालाका निरीक्षण करते रहनेका वचन दिया। ब्रिटिश गवर्नमेंटको धन्यवाद देकर सम्मेलनका कार्य पूर्ण हुआ। इस विषयमें आगे पैर रखनेके लिये उन्नावके वैद्य और आयुर्वेद-प्रेमी सज्जन तो धन्यवादके पात्र हैं ही; किन्तु इसके लिये उद्योग करनेमें पं० रघुवरदयालु जी वैद्य शास्त्रीने भी बड़ा परिश्रम किया है। अतएव इन्हें भी धन्यवाद देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। आशा है अब शीघ्र ही प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन होनेका भी समाचार सुनाई पड़ेगा।

वैद्यसेवासमिति।

माघमेला समाप्त हो गया. इस पूर्ण कुम्भ माघ मेलेके समय वैद्यसमाजने सर्वसाधारणकी जो सेवा की है. वह अवर्णनीय है, उत्साह प्रदान करने योग्य है और वैद्योंका गौरव बढ़ाने योग्य है। वैद्य-सेवासमितिके तत्त्वसे मेलेमें सात औषधलाय खुले हुए थे। उसका प्रधान औषधालय सेवासमितिके कैम्पमें था, दूसरा आर्यसमाजके कैम्पमें और तीसरा झूंसी पार था। सेवासमितिके कैम्पमें कलकत्तेके श्री विशुद्धानन्द विद्यालयका औषधालय भी था। हिन्दूसभाके कैम्पमें चुरूकी सर्वहितकारिणी सभाका औषधालय था। सरकारी अस्पतालके सामने प्रयागकी आयुर्वेदप्रचारिणी सभाका औषधालय

था और भूंसीपार कालीकमली क्षेत्रके कैम्पमें कालीकमलीवाले बाबा रामनाथजीका एक औषधालय था। इन सभी औषधालयोंमें वैद्य लोग उत्साहसे काम करते थे और प्रत्येक औषधालयकी ओरसे घूम फिर कर दुःखी रोगियोंकी दवा करने वाले वैद्योंका भी प्रबन्ध था। यद्यपि सरकारी अड़चनोंके कारण भीड़ कम हुई, तथापि हिसाबियों-का कहना है कि माघकी अमावस्याके दिन १८ लाखसे कम मनुष्यों-ने स्नानमें भाग नहीं लिया था। लोग प्रायः नित्य देखते थे कि इन देशी औषधालयोंमें बड़ी आस्था और विश्वासके साथ रोगियोंका झुंड टूटता था और भीड़के दिनोंमें तो प्रत्येक औषधालयमें पांच छः सौ तक दुःखी आते थे और इतनी ही संख्या घूम फिर कर दवा करनेवाले वैद्योंके हाथ हो जाती थी। इस प्रकार इन उत्साही वैद्योंने अपने देशका बहुत बड़ा काम किया, अपने भाइयोंकी बहुत कीमती सेवा की। सरकारका बहुत भारी बोझा हलका किया, और सबसे बड़ी बात यह कि अपना शिर ऊँचा किया, आंखें खोल कर देखने-वालोंने इस कार्यकी प्रशंसा की। माननीय मालवीयजी, माननीय पं० विष्णुदत्त शुक्ल प्रभृतिने अपना संतोष प्रकट किया; किन्तु मेले-की रिपोर्ट लिखनेवाले जिन सज्जनोंने सेवासमितिके उचित और उपयोगी कामोंकी जब कालमोंमें प्रशंसापूर्ण रिपोर्ट भेजी तब इस उपयोगी कामको उन्होंने या तो भुला दिया या एक दो लाइनमें ही अपना कर्तव्यपूर्ण किया, अवश्य ही इनकी कंजूसी पर हमें क्षोभ हुआ है। जो हो, जिन वैद्योंने अपना काम छोड़ कर बाहरसे आकर यह सेवा सम्पादित की वे हमारे और देशके प्रशंसापात्र हैं, उन्होंने अपनी योग्यता संसारको दिखलायी है। वैद्यसेवासमितिके सभापति ठाकुर प्रसादीलाल झा और मन्त्री पं० नारायणदत्तजीने इसके लिये जो घनघोर परिश्रम और प्रयत्न किया है उसीसे यह कार्य ऐसी उच्च श्रेणीका हुआ है।

प्रयागकी आयुर्वेद प्रचारिणी सभाने प्रतिवर्षके समान इस वर्ष भी माघमेलेके समय अपना औषधालय खोल कर बड़ा काम किया है। बल्कि अन्य वर्षोंसे इस वर्ष यह काम कुछ विशेष उत्साह और परिश्रमके साथ किया गया। इसका सारा श्रेय अवश्य आयुर्वेद-प्रचारिणी सभाके उत्साही मन्त्री पण्डित देवकीनन्दन त्रिपाठीको

है। आपने यह काम नया उठाया था, किन्तु बहुत उत्तमतासे निर्वाह किया। प्रतिवर्षके समान पंडित बद्रीनारायण शुक्ल जीने इसमें बराबर परिश्रम किया। पण्डित प्राणनाथ चतुर्वेदी, पं० विश्वेश्वर मिश्र, बाबू जयकुमार जी, बाबू सोहनलाल जी प्रभृतिने भी समय समय पर कार्यभार सँभाला।

प्रयाग कुम्भकी सहायतार्थ—वैद्यसेवासमितिके डेपूटेशनका

भ्रमण।

नवम्बर मासकी ६ तारीखको समितिके मन्त्री नारायणदत्त शर्मा और पं० रामचन्द्र जी महमूदपुर बिजनौर निवासी तथा एक भृत्य हरिद्वारसे अमरोहा पहुंचे। वहाँ आयुर्वेदाचार्य्य पं० नाथूरामजीसे मिले, क्योंकि इन्हें भी डेपूटेशनके लिये साथ लेना था, आयुर्वेदाचार्य्यजीके परमोत्साह को देख कर, सम्मति हुई कि पहिले यहाँसे ही प्रारम्भ करना चाहिये, इसी रोज स्थानीय साहित्याचार्य्य पं० भगवद्दत्त जी तथा बाबूराम जी वैद्य एवं भजनोपदेशक पं० गीताराम जी तथा भगवन्त सिंह जी ओझा आदिका एक डेपूटेशन बना और शहरके प्रतिष्ठित रईसोंसे मिला, पं० नाथूरामजीने समितिके उद्देश्योंको बताया। सबने बड़े उत्साह से डेपूटेशनकी सफलताके लिये सहायता देना प्रारम्भ कर दिया। यहाँ के सज्जन श्रद्धानुसार दान देकर पुण्यभागी हुए। यहाँ से डेपूटेशनको १०३॥) रोकड़ी प्राप्त हुये।

ता० १०-११-१७ को अमरोहेसे आयुर्वेदाचार्य पं० नाथूराम जी तथा भजनोपदेशक पं० गीताराम जी डेपूटेशनके साथ हुए। डेपूटेशन हापुड़ पहुंचा। हापुड़के प्रतिष्ठित पं० जयदेव शर्मा महोपदेशक तथा पं० रामचन्द्र जी शास्त्री पं० केवलराम जी सिद्ध वैद्यसे पूर्व ही भेंट हुई। इन्होंने स्वागत करते हुए स्थानीय संस्कृत पाठशाला देवी पर ठहरने का प्रबन्ध कर दिया और शहर के प्रतिष्ठित वैद्य पं० भगवतीप्रसादजीसे प्रथम भेंट हुई। समितिके मन्त्रीने पूर्वसे ही इनसे पत्र-व्यवहार कर रक्खा था। किन्तु इनका कोई

समुचित उत्तर नहीं मिला था। प्रत्यक्षमें इनसे वार्तालापसे निश्चय हुआ कि डेपूटेशनमें ये सम्मिलित नहीं होंगे। अस्तु, इसी रोज ऋषिकुल हरिद्वारके प्रतिष्ठित प्रतिनिधि पं० कृपाराम शर्मा जी पंजाबरत्न जो किसी कार्य्यवश यहाँ आये हुए थे। इनसे डेपूटेशनका परिचय हुआ। मन्त्रीके निवेदनसे बड़े प्रेमके साथ ये भी डेपूटेशनमें सम्मिलित हुए। उपरोक्त महानुभावोंका डेपूटेशन शहरकी सनातनधर्म-सभाके मन्त्रीजीसे मिला। इन्होंने भी सम्मिलित होकर दान एकत्रित करना स्वीकार नहीं किया, किन्तु स्वयं बड़े उत्साहसे दान दिया और अन्य प्रकारकी सुविधाएँ करनेका अभिवचन दिया। पं० जयदेव शर्मा जी परमोत्साह उद्योगसे डेपूटेशन शहरके प्रतिष्ठित रईस तथा आर्य्य-समाजके मन्त्री तथा सभापतिसे भी मिला। सबने उत्साह पूर्वक डेपूटेशन-की सफलताके लिये सहायता की। विशेषतः पं० जयदेव शर्म्मा, पं० कृपाराम जी शर्मा पंजाबरत्न तथा पं० केवलराम जी सिद्धको धन्यवाद है। हापुड़ से डेपूटेशन को १०९॥।-)॥ प्राप्त हुए।

ता० १३-११-१७ को डेपूटेशन देहली पहुंचा और स्वर्गवासी आनरेरी मजिस्ट्रेट लाला लक्ष्मीनारायणजी खत्रीकी धर्मशालामें गोस्वामी देवाचार्य पं० गोपीरमणजी वैद्यरत्नके प्रबन्धसे ठहरा, दूसरे दिन स्थानीय वैद्योंसे डेपूटेशनकी मुलाकात हुई। तीसरे दिन भी सब लोगोंसे भेंट ही होती रही। सबकी सम्मतिसे यह स्थिर हुआ कि समितिकी सहायतार्थ स्थानीय वैद्योंकी एक सभाकी जाय इसका भार पं० शिवनारायणजी वैद्यके ऊपर दिया गया। इसीलिये धर्मपुरमें एक सभाकी गयी; परन्तु वैद्य महानुभावोंने आनेकी कृपा न की। जो कुछ दो चार वैद्य उपस्थित हुए उनकी सम्मति हुई कि यह कार्य्य कैसे किया जाय। वाद-विवादसे निश्चय हुआ कि कल फिर लक्ष्मीनारायणजीकी धर्मशालामें सभा की जाय। नियमानुसार दूसरे दिन फिर सभाका नोटिस दिया गया। परन्तु, फिर भी किसी महानुभावके दर्शन न हुए। यहां पं० जयनारायणजी वैद्य तथा पं० गोपीरमणजी वैद्यरत्न एवं पं० श्रीनिवासजी वैद्यरत्न उपस्थित हुए। फिर सहायताके लिये वैद्योंके स्थानों पर जाकर सहायता मांगी गयी। इस उद्योगके लिये देवाचार्य्य पं० गोपी रमणजी तथा

श्रीनिवासाचार्य्यजी डेपूटेशनमें सम्मिलित हुए और स्थानीय वैद्योंसे मिल कर सहायताका प्रबन्ध करने लगे। स्थानीय वैद्योंने समितिके इस कार्य्यको उन्नति-वर्द्धक समझकर यथायोग्य सहायता दी। देवाचार्य्य पं० गोपीरमणजीके यहां डेपूटेशनको दो रोज तक भोजन पार्टी हुई। और जब तक देहलीमें डेपूटेशनकी स्थिति रही तब तक इनसे बहुत कुछ सहायता मिलती रही। पं० श्रीनिवासाचार्य्यजी अस्वस्थतामें भी डेपूटेशनके साथ भ्रमण करते रहे। पं० मन्नूलालजी तथा गोस्वामी मुन्नीलालजी तथा कविराज हरिश्चन्द्रजी आदि महानुभावोंने बहुत कुछ परिश्रम किया इसके लिये उपरोक्त महाशयोंको धन्यवाद है। इस प्रकार इन्द्रप्रस्थसे २११) (केवल वैद्योंहीसे) प्राप्त हुए।

ता० २३-११-१७ को डेपूटेशन देहलीसे रिवाड़ी पहुंचा। कार्य्य होनेसे आयुर्वेदाचार्य्य पं० नाथूराम शर्माजी तथा भजनोपदेशक गीतारामजी तो अमरोहे चले आये। रिवाड़ीमें कोई विशेष वैद्य-समुदाय न होनेसे यहाँ कुछ न हो सका—स्थानीय पं० वैजनाथजी वैद्यने सफलताके लिये कुछ उद्योग किया भी, परन्तु वह सफलीभूत न हुआ। इसलिये इसी रोज़ यहांसे डेपूटेशन भिवानी पहुंचा। और रायबहादुर ताराचन्द्रजीकी धर्मशालामें ठहरा। स्थानीय वैद्य लक्ष्मीनारायणजी जिनसे मन्त्रीने पत्रव्यवहार किया था उनसे मिला। इन्हींके स्थानमें पं० नौवतरायजी वैद्यसे भी भेंट हुई। पं० नौवतरायजी बड़ी प्रसन्नतासे डेपूटेशनमें सम्मिलित हुए, और स्थानीय अन्य वैद्योंसे भेंट करायी। उनमें पं० प्रेमनिधि शर्मा वैद्योपाध्याय बुलन्दशहर निवासी जो हालुवासिया औषधालयमें कार्य्य करते हैं इनसे परिचय हुआ। समितिके मन्त्रीने डेपूटेशनके आनेका वृत्तान्त कहा। इन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे सम्मिलित होना स्वीकार किया। और भी कई वैद्य महाशयोंसे वार्तालापका सौभाग्य प्राप्त हुआ। पं० प्रेमनिधि शर्म्माके परमोद्योगसे शहरके रईसोंसे मुलाकात हुई। दो रोज तक श्रीमानोंके दर्वाजों पर मांगने पर भी उद्योग सफल न हुआ। यह ढङ्ग देखकर जहां बड़े बड़े दानीयोंकी वस्ती हैं खेद हुआ। परन्तु फिर भी उद्योग जारी रक्खा। सेठ नैनसुखदासजीके हृदयमें धर्मांकुर कुछ जमाया और प्रथम इन्होंनेही सहायता

प्रारम्भ कर दी। फिर क्या था जहां जहां गये वहां थोड़ी थोड़ी सहायता मिल ही गयी।

पं० प्रेमनिधि शर्म्माजीके परम उद्योगके लिये तथा सेठ नैनसुखदासजीके प्रथम दानके लिये विशेषतः धन्यवाद है। भिवानीसे केवल ५०) रोकड़ी प्राप्त हुए।

ता० २६-११-१७ को भिवानीसे डेपूटेशन सिरसा पहुंचा और स्थानीय पं० हजारीलालजी वैद्य तथा पं० गंगाधरजीके प्रबन्धसे एक धर्मशालामें ठहरा। यहां लोगोंका इस कार्य्यमें कुछ उत्साह न देखा, इसलिये यहांसे भी विशेष सहायता न मिल सकी। कुछ वैद्योंसे ही सहायता मिली। जिसकी संख्या १०) हुई।

ता० २८-११-१७ को डेपूटेशन सिरसासे चूरू पहुंचा। यहां स्थानीय पं० देवीप्रसादजी शास्त्रीके यहां संस्कृत पाठशालामें ठहरा। पण्डितजीने स्थानीय वैद्यों और सनातनधर्म-सभाके मन्त्री तथा सर्वहितकारिणी सभाके मन्त्री और अन्यान्य प्रतिष्ठित श्रीमानोंसे डेपूटेशनका परिचय कराया। सबकी सम्मति हुई कि एक सभा की जाय और उसमें समितिकी सहायताके लिये अपील की जाय। तदनुसार सनातनधर्म-सभाके स्थानमें सभा हुई और सहायता मिलना प्रारम्भ हो गया। परन्तु बहुतसे महानुभावोंके उपस्थित न होनेसे जैसी कुछ सहायता मिलनी चाहिये थी वैसी न मिली। दूसरे दिन फिर बाज़ारमें सभा की गयी, कुछ लोग फिर उपस्थित हुए और थोड़ा दान लिखा गया। परन्तु जैसी यह पुण्यमयी नगरी है वैसी सफलता न हुई। यहां यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि कई आयुर्वेदीय धर्मार्थ औषधालय खुले हैं जिनमें रोगियोंकी चिकित्सा भले प्रकारसे की जाती है। हालहीमें एक विदेशीय दातव्य औषधालय खुला है। चूरूसे ११६) संगृहीत हुए। चूरूसे ४ दिसम्बरको डेपूटेशन हरिद्वार लौट आया।

फिर ता० २०-१२-१७ को हरिद्वारके वैद्यराज पं० लक्ष्मणदत्तजी और समितिके मन्त्री नारायणदत्त शर्मा पं० जगतनारायणजीके आह्वानसे नजीबाबाद पहुंचे। उक्त पं० जीके सुपुत्र पं० विश्वनाथजीके औषधालयमें ठहरे। पंडितजीके परम उत्साहसे स्थानीय सज्जनों

(शेष टाइटिलके दूसरे पृष्ठ पर)

॥ श्रीधन्वन्तरये नमः ॥

त्रिदोषतत्त्वं—

तस्य चिकित्सोपयोगश्च ।

(लेखकः—पं० वामन केशव दातार शास्त्री नासिकस्थः)

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ।
विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्तयन्ति च ॥

इहास्मिन्नायुर्वेदे वातपित्तकफानां प्राधान्यं प्राधान्येनास्ति वर्णितम् । सुश्रुते त्वेषां माहात्म्यं व्रणप्रश्नाध्याये "वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभवहेतवः तैरेवाऽव्यापन्नैरधोमध्योर्ध्वसन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्यते आगारमिव स्थूणाभिस्तिसृभिः अतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके । त एव व्यापन्नाः प्रलयहेतवः तदेभिरेव शोणितचतुर्थैः संभवस्थितिप्रलयेषु अप्यविरहितं शरीरं भवति ।

"नर्ते देहः कफादस्ति न पित्ताश्च च मारुतात् ।
शोणितादपि वा नित्यं देह एतैस्तु धार्यते ॥"

इति वर्णितम् । आयुर्वेदस्याद्यतमं साध्यं शरीरारोग्यसाधनम् , तदर्थमेवाविर्बभूवायुर्वेदः "धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम् , रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ।" "आरोग्यार्थं क्रियाक्रमः" इति च चरकः ।

शरीरारोग्यविधायकाः शरीरारोग्यकारका वातपित्तश्लेष्माणः, अतस्तेषां यथावद्विज्ञानं विधेयमस्यं, तद्विज्ञानं तु तत्संभवतत्स्वरूपतत्कार्यतत्संस्थानतद्रोगकारित्व तद्रोगोपशमकत्वतत्प्रकोपादिज्ञानेन साकल्यं स्यात् । अतस्तद्विचारणे क्रियते कियान् प्रयत्नः ।

तथा वातपित्तश्लेष्मणामस्तित्वे आधुनिकानां महान् आरोपोऽस्ति । न सन्ति वातपित्तश्लेष्माणोऽस्मिन् देहे केवलं प्राचीनर्षिभाषितेन तेषां प्रामाण्यं न सिध्यति वयं न शाब्दप्रमाणमन्तारः अस्माभिरतीवपरिश्रमेण प्रयत्नेन च प्रत्यक्षशारीरज्ञानं सम्पादितं, ज्ञानोन्मी-

लितचक्षुभिरस्माभिः कृत्स्नदेहगतपदार्थविवरणावसरे प्राचीनर्षि-प्रोक्त मायुर्वेदस्थितिरूपं जीवितमिवायुर्वेदस्य वातपित्तकफास्तित्वं न दृष्टमतो न श्रद्धां दध्मो ऋषिवचने वयमिति तेषामाक्षेपः।

प्रत्यक्ष शारीरदर्शनेन चाधुनिक शास्त्रज्ञानेन प्रशस्तिमापन्नानामयमाक्षेपोऽतीव बलवत्तरो यात्यस्मिन् काले। अयं हि आधुनिकः कालः सर्वार्थेन पाश्चात्यशास्त्रज्ञानां यशस्करः, पुष्टिकरः, प्रभावैश्वर्य संपादकः, सर्वलोकश्रद्धासमुत्पादकस्तथास्मच्छास्त्राणां च तत्संपन्नानां बलतेजोयशः क्षयकरः, परमाश्रद्धासंपादकोऽस्तीति प्रज्ञातमेव सर्वविदुषां। अतोऽस्मिन्विषये काले यत् पूर्वोक्त पाश्चात्य विद्या संपन्नैः प्रतिज्ञातं, न सन्ति शरीरेऽस्मिन् वातपित्त श्लेष्माण इति। तत्प्रतिज्ञयैव संजातश्रद्धानां जनानां अस्मदायुर्वेदोक्तं सर्वं जल्पितप्रायं न सत्यकलितमिति वार्ता स्यात्, अनया च वार्तया समुत्पन्नोऽस्मद्विलय इति। अतः सविशेष प्रयत्नेन शरीरे वातपित्त श्लेष्मगवेषणं च, तत्साधक ऋषिप्रोक्तकारणानां यथा वन्निरूपणं्यवश्यं यत्नो विधेयोऽतोऽयं प्रयत्नः।

केषांचिन्मते अयं प्रयत्नः प्राच्यप्रतीच्यज्ञान संमीलनेन सफलः स्यादाधुनिक चिकित्साशास्त्र तत्त्वानि चायुर्वेदोक्त तत्त्वानि कैर्गुणैः समविषमतां यान्तीत्यालोच्य तदनुसारेण ग्राह्याग्राह्यता मन्तव्या उभयोरिति।

केचनास्मदायुर्वेद एव सर्वजगत्स्थितचिकित्साशास्त्राणां तत्स्थिततत्त्वानां च तन्तूनामूर्णनाभिरिव मूलकारणं मन्यते। यदन्यत्र तदायुर्वेदे यन्नायुर्वेदे तन्नान्यत्र इति श्रद्धाभक्तानां चाज्ञातपरविद्यातत्त्वानामस्मदायुर्वेदे यदिदं तत्त्वं तदेवेदं पाश्चात्यचिकित्साशास्त्रे इति निःशंकं वदतां महान्संरंभो दृश्यते स्वमतस्थापने एव द्वितीयो यत्नः।

सर्वेऽपि सुधियस्तेषां प्रयत्नोप्यभिनंदनीय एव ममत्वेवं मतं यदस्मच्छास्त्रस्थिततत्त्वविवरणमेव याथातथ्येन सकारणं सप्रत्ययं सविमर्शं विदुषां गुणैकपक्षपातिनामग्रे कर्तव्यम्। तेन श्रद्धावृद्धिः स्यात् शास्त्रादरोऽपि। अतएव वातपित्तश्लेष्मास्तित्व तत्कार्य विवरणे आयुर्वेदीयमेव मतं पुरतः क्रियते। न नव्य प्राचीनमत

समन्वयोऽशक्यत्वान्नापि द्वितीयः साहसिकः प्रयत्नः। नव्य प्राचीन मतसमन्वय करणे कस्यापि महतोऽग्निवेशसुश्रुतयोरिव पुरुषस्यावश्यकता। नास्मदादीनां मंडूकप्लुतिबुद्धिमतामयमधिकार इति सविनयं विज्ञाप्य क्रियते प्रवेशो विषयविषये।

तत्र दोषा वातपित्तकफाः कृत्स्नदेहचरा, देहाधिष्ठानाः सन्ति, तस्माद्देहसंभूतिरेवादौ विचार्या। देहस्तु कथं संभवतीत्यत्र सर्व दर्शन काराणां भिन्नभिन्नमतानि सन्ति। तथापि पञ्चानां पृथ्वयेजो वाय्वाकाशानां शरीराभिनिर्वृत्तौ तथा जगत् संभूत्यां कारणत्वं सर्वैः स्वीकृतम्।

तथाहि "अत्रैके देहमात्रात्मदर्शिनो लोकायतिका देहव्यतिरिक्तस्यात्मनोभावं मन्यमानाः समस्तव्यस्तेषु बाह्येषु पृथिव्यादिषु अदृष्टमपि चैतन्यं शरीराकारपरिणतेषु भूतेषु स्यादिति संभावयन्तस्तेभ्यश्चैतन्य-मदशक्तिवद्विज्ञानं चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुष इति चाहुः। (शंकराचार्य शारीर भाष्यं अ० ३ पा० ३ अ० ३० सूत्र ५३)

"तथाग्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथानिलः।
केनेदं चित्रितं तस्मात्स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः।"

(सर्वदर्शनसंग्रहे)

एवं चार्वाकैः जगत्-शरीरसंभवे पृथिव्यादि भूतकारणं निर्धारितम् तथा चोष्णशीतादिधर्माश्च स्वीकृता भूतानाम्।

बौद्धास्तु "बाह्यमाभ्यन्तरं च वस्त्वभ्युपगच्छन्ति भूतं भौतिकं चित्तं चैत्तं च। तत्र भूतं पृथ्वीधात्वादयो भौतिकं चक्षुरादयोरूपादयश्च चतुष्टये च पृथिव्यादिपरमाणवः खरस्नेहोष्णेरणस्वभावास्ते पृथिव्यादिभावेन संहन्यन्त इति मन्यन्ते। तथा रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कारसंज्ञकाः पंचस्कंधास्तेपि आध्यात्म्यसर्वव्यवहारस्वभावेन संहन्यन्त इति मन्यन्ते।"

(शांकरभाष्ये अ० २ पा० २ अधि० ४ सूत्र १८)

"अथ पुनरयं द्वाभ्यां कारणाभ्यां भवति प्रतीत्यसमुत्पादो हेतूपनिबंधतः प्रत्ययोपनिबंधतश्च। स पुनर्द्विविधः बाह्यआध्यात्मिकश्च। बाह्यप्रतीत्यसमुत्पादस्य हेतूपनिबंधः। यथा बीजं, बीजादंकुरोदंकुरात्पत्रं, पत्रात्काण्डं, काण्डान्नालो, नालाद्गर्भो, गर्भाच्छूकः, शूकात्पु-

त्पुष्पं, पुष्पात्फलमिति। तत्र बीजस्य नैवं भवति ज्ञानमहमंकुरं निर्वर्तयामि। अंकुरस्यापि नैवं भवति ज्ञानमहं बीजेन निर्वर्तित इति। कार्यकारणभावनियमलक्षणो बाह्यप्रतीत्य समुत्पादस्य हेतूपनिबंधः। प्रत्ययोपनिबन्धः प्रतीत्य समुत्पादस्योच्यते। प्रत्ययो हेतूनां समवायः। हेतुं हेतुं प्रत्ययन्ते हेत्वन्तराणीति तेषां भावः प्रत्ययः, समवाय इति यावत्। यथा षण्णां धातूनां समवायाद्बीजहेतुरंकुरो जायते। तत्र च पृथिवी धातुः बीजस्य संग्रहकृत्यं करोति, अब्धातुर्बीजं स्नेहयति, तेजो धातुर्बीजं परिपाचयति, वायुर्धातुर्बीजं निर्हरति, आकाशधातुर्बीजस्यानावरणकृत्यं करोति, ऋतुरपि बीजस्य परिणामं करोति इति बाह्यप्रतीत्यसमुत्पादस्य प्रत्ययोपनिबंधः। अथ आध्यात्मिकप्रतीत्यसमुत्पादस्य हेतूपनिबंधः। अविद्या, संस्कारविज्ञानं, नामरूपे, षडायतनानि, स्पर्शो, वेदना, तृष्णा, उपादानं, भवो, जातिः, जरामरणे, शोकः परिवेदना, दुःखं, दुर्मनस्कता, इति। पूर्वं परमुत्पादयति। तथा परस्पराणां उत्पादकोऽहमुत्पन्नोहमिति ज्ञानं नास्ति। आध्यात्मिक प्रतीत्य समुत्पादस्य प्रत्ययोपनिबंधो यथा—पृथ्व्यप्तेजो वाय्वाकाशविज्ञानधातूनां समवायाद्भवति कायः। तत्र कायस्य पृथिवीधातुः काठिन्यं निर्वर्तयति, अब्धातुः स्नेहयति कायम्। तेजोधातुः कायस्य शीतपीते परिपाचयति वायुधातुः कायस्य श्वासादिक्रियाः सम्पादयति, आकाशधातुः कायस्यान्तः सुषिरभावं करोति, यस्तु नामरूपांकुरमभिनिवर्तयति पंचविज्ञानकार्यसंयुक्तं सास्रवं च मनोविज्ञानं सोयमुच्यते विज्ञानधातुः।

(भामतीकाराः वाचस्पतिमिश्राः अ० २ पा० २)

अनेन विस्तृतावतरणेन बौद्धा अपि जगत्कायं चामनन्ति पृथिव्यादि निर्मितम्, तथा पृथिव्यादीनां खरस्नेहादि धर्मांश्च।

अथजैनाः सप्तचैषां पदार्थाः सम्मता जीवाजीवास्रवसंवरनिर्जरमोक्षा नाम। संक्षेपतस्तु द्वावेव पदार्थौ जीवाजीवाख्यौ। यथायोगं तयोरेव इतरान्तर्भावादिति मन्यन्ते। तयोरिममपरं प्रपञ्चमाचक्षते, पञ्चास्तिकायोनाम जीवास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायो, धर्मास्तिकायो ऽधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकायश्चेति।

(शंकर० शा० भा० अ० पा० २ अ० ६ सूत्र ३१)

तत्र पुद्गलास्तिकायो नाम पृथिव्यादि चत्वारि भूतानि स्था-

चरं जंगमं च। पूर्यन्ते गलन्ति इति पुद्गलाः परमाणवः, तत्समूहो ऽत्र पृथिव्यादिरुक्तः। वेदनीयं, नामिकं, गोत्रिकमायुष्कं चेति कर्मचतुष्टयमेतत्कर्मचतुष्टयेन संभवः सर्वस्येति। सक्रियस्य बीजस्य पावकपवनवशादीषद्घनीभावः शरीराकारपरिणामहेतुर्वेदनीयं कर्म। तच्छक्तिमति तस्मिन् बीजे कललाख्यद्रवावस्थां बुद्बुदावस्थां चारंभकक्रियाविशेषो नामिकं बीजस्य शरीराकारपरिणामशक्तिर्गोत्रिकं शुक्रशोणितव्यतिकरं जाते मिलितं तदुभयरूपमायुष्कं। तान्येतानि शुक्रपुद्गलाश्रयत्वादघातीनि कर्माणि।"

(आनन्दगिरिव्याख्या अ० २ पा० २ अधि ६ सूत्र ३२)

इत्यनेन भूतानां तद्गतधर्माणामपि शरीरसंभवे प्रामाण्यं स्वीकुर्वन्ति इति स्पष्टम्।

तथा च नैय्यायिकाः "चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयश्शरीरं। घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः। पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाश इति भूतानि। गंधरसरूपस्पर्शशब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थाः (इन्द्रियार्थाः)। गंधरसरूपस्पर्शशब्दानां स्पर्शपर्यन्ताः पृथिव्याः, अप्तेजोवायूनां पूर्वं पूर्वमपोह्य आकाशस्योत्तरः। (शरीरं) पार्थिवं गुणान्तरोपलब्धेः। पार्थिवाप्यतैजसं तद्गुणोपलब्धेः। निःश्वासोच्छ्वासोपलब्धेश्चातुर्भौतिकम् गंधक्लेदपाकव्यूहावकाशदानेभ्यः पांचभौतिकम्।" इत्येतैः न्यायदर्शनसूत्रैश्चेष्टा इन्द्रियाणि तद्विषयाश्चैतेषामाश्रयभूतं शरीरम्। इन्द्रियाणि तेषामर्थाश्चपंचद्रव्येभ्यः पृथिव्यादिभ्यः संभूताः। पृथिवीद्रव्यसंभूतं शरीरम्। स्थूलपंचद्रव्यसंयोगेन न पांचभौतिकं शरीरस्य। तेषां मते स्थूलद्रव्यसंयोगो न भवति। तर्हि, शरीरे दृश्यमाना इतरभूतधर्मा अणुद्रव्य संयोगसंभूताः, सर्वाण्यपि स्थूलद्रव्याणि सूक्ष्मेतरद्रव्यचतुष्टयसंयुक्तानि। अतएव विष्टंभ्यपरंपरेण इति सूत्रेण संयोगो दर्शितः। तत्संयोगसंयुक्तं हि पार्थिवं द्रव्यं शरीरोत्पादकम्। तस्मात् पार्थिव स्थितपंचद्रव्यगुणत्वं। शरीरस्येति सिद्धम्। एतदेववात्स्यायनभाष्यकारैरुक्तम् पंचानां भूतानां संयोगे सति शरीरं भवति, भूतसंयोगो हि मिथः पञ्चानां न निषिद्धः। एतेन जगत्कलेवरसंभवस्तु कर्मचोदित पंचद्रव्येभ्यस्तत्स्थितगुणकर्मादिभ्यः मन्यन्ते इत्यागतम्।

अथ वैशेषिकाः "तत्पुनः पृथिव्यादि कार्यद्रव्यं त्रिविधम्। शरीरेन्द्रिय विषयसंज्ञकम्। रूपरसगंधस्पर्शवती पृथिवी। रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाश्च। तेजो रूपस्पर्शवत्। स्पर्शवान् वायुः व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः। अप्सुशीतता। तेजस उष्णता।

अत्र प्रशस्तपादभाष्यं पृथिव्या रूपमनेकप्रकारं शुक्लादि, रसः षड्विधो मधुरादिः, गंधस्सुरभिरसुरभिश्च, स्पर्शोस्यानुष्णाशीतः। सा पृथिवीद्विविधा नित्या परमाणुरूपाऽनित्या कार्यरूपा। कार्यं शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकं त्रिविधम्। शरीरं मनुष्य लोके, इन्द्रियं गंधव्यंजकं सर्वप्राणिनां घ्राणम्। आपः शुक्लमधुरशीतास्त्वासां रूप रसस्पर्शाः। इन्द्रियं सर्वप्राणिनां रसव्यंजकं रसनं, शरीरं वरुणलोके, विषयः सरित्समुद्रादिः। नित्याः परमाणुरूपाः अनित्याः कार्यरूपाः कार्यं त्रिविधमुक्तम्। तेजो रूपस्पर्शवत्। तत्र शुक्लं भास्वरं च रूपम्, उष्ण एव स्पर्शः। तद्विविधमणुकार्यभावात् नित्यानित्यं च। अनित्यं शरीरेन्द्रियविषयकार्यकरम्। शरीरं आदित्यलोके, इन्द्रियं सर्वप्राणिनां रूपव्यंजकं चक्षुः, विषयाबहवः तत्र भुक्तस्य आहाररसस्य रसादि परिणामकरः औदर्यः वायुः स्पर्शवान्। स्पर्शोऽस्यानुष्णशीतः। स द्विविधोऽणुकार्यभावान्नित्यानित्यश्च त्रिविधकार्यकरः। इन्द्रियं सर्वप्राणिनां स्पर्शोपलंभकं सर्वशरीरव्यापि त्वगिन्द्रियम्। शरीरं वायुलोके, विषय बहुत्वेपि प्राणोऽन्तः शरीरे रसमलधातूनां प्रेरणादि हेतुः पंचप्रकारः। आकाशस्य शब्दोलक्षणं सर्वप्राणिनां च शब्दोपलब्धौ श्रोत्रमिन्द्रियं।

अत्रापि भूतानां परस्परमणुसंयोगो भवतीतिवैशेषिकमतम्। तथा च सूत्रं "अणुसंयोगस्त्वप्रतिषिद्धः"। स च संयोगः संयुक्त संयोगेन भवति। यथा पार्थिवाप्ययोरण्वोः संयोगे सति अन्येन पार्थिवेन पार्थिवस्य। अन्येनाप्येनाप्यस्य। युगपत्संयोगौ भवतः। तदा ताभ्यां संयोगाभ्यां पार्थिवाप्ये द्वयणुकेयुगपदारभ्येते। स संयुक्त समवायः। प्रशस्तपादभाष्यं शरीरजगदुत्पत्तिसाधकानि पंचद्रव्याणि स्वगुणकर्मसंयोगसहितानि सन्ति इति मन्यन्ते।

तथा च सांख्यद्वयमते "सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। प्रकृतेर्महान्। महतो अहंकारो अहंकारात्पंचतन्मात्राणि उभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यस्स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः। (सांख्यसूत्राणि)

प्रकृतेर्महान्, महतोऽहंकारः, एकादश पंचतन्मात्रं यत्कार्यम् सोऽहंकारोऽपि त्रिविधः। वैकृतो राजसस्तामसश्च। वैकृतात्सात्त्विकान्मनो जायते। राजसादहंकाराद्दशेन्द्रियाणि। तमसादहंकाराच्च तन्मात्राणि। तन्मात्रेभ्यः पंचीकरणव्यवस्थया स्थूलभूतानि। तन्मात्राणि नाम सूक्ष्मभूतानि, शब्दस्पर्शरूपरसगंधानि। एतैः पंचविंशतितत्त्वैः पातञ्जलमत ईश्वरसहितैः षड्विंशतितत्त्वैः सर्वं जगदुत्पन्नं भवति। तस्माच्छरीरस्य। तस्मात्त्रयोविंशतितत्त्वात् (प्रकृतिपुरुषरहितात्) स्थूल सूक्ष्मशरीरद्वयस्यारंभ इत्यर्थः।

(श्रीविज्ञानभिक्षुभाष्यम्)

वेदांतिनामपि—

"चिदानंदमयब्रह्म प्रतिबिंबसमन्विता।
तमोरजःसत्वगुणा प्रकृतिर्द्विविधा च सा॥
सत्वशुद्ध्यविशुद्धिभ्यां मायाविद्ये च ते मते।
मायाबिंबो वशीकृत्य तां स्यात्सर्वज्ञ ईश्वरः॥
अविद्या वशगस्त्वन्यस्तद्वैचित्र्यादनेकधा।
साकारणं शरीरं स्यात्प्राज्ञस्तत्राभिमानवान्॥
तमःप्रधानःप्रकृतेस्तद्भोगादीश्वराज्ञया।
वियत्पवनतेजोम्बुभुवो भूतानि जज्ञिरे॥
तैरन्तः करणं सर्वं वृत्तिभेदेन तद्द्विधा।
मनो विमर्शरूपं स्याद् बुद्धिः स्यान्निश्चयात्मिका॥
रजोंशैः पञ्चभिस्तेषां क्रमात्कर्मेन्द्रियाणि तु।
वाक्पाणिपादपायूपस्थाभिधानानि जज्ञिरे॥
तैः सर्वैः सहितः प्राणो वृत्तिभेदात्स पंचधा।
प्राणोपानः समानश्चोदानव्यानौ च ते पुनः॥
बुद्धिकर्मेन्द्रियप्राणपंचकैर्मनसाधिया।
शरीरं सप्तदशभिः सूक्ष्मं तल्लिंगमुच्यते॥
प्राज्ञस्तत्राभिमानेन तैजसत्वं प्रपद्यते।
हिरण्यगर्भतामीशः तयोर्व्यष्टिसमष्टिता॥
समष्टिरीशः सर्वेषां स्वात्मतादात्म्यवेदनात्।
तदभावात्ततोन्येतु कथ्यन्ते व्यष्टिसंज्ञया॥

तद्भोगाय पुनर्भोग्य भोगायतनजन्मने।
पंचीकरोति भगवान् प्रत्येकं वियदादिकम्॥
द्विधा विधाय चैकैकं चतुर्धा प्रथमं पुनः।
स्वस्वेतरद्वितीयांशे योजनात्पंचपंचतेः॥
तैरंडस्तत्र भुवनं भोग्यभोगाश्रयो भवः।
हिरण्यगर्भः स्थूलेऽस्मिन्देहे वैश्वानरो भवेत्॥
तैजसा विश्वतां याता देवतिर्यङ्नरादयः॥"

(पंचदशी तत्त्वविवेके, विद्यारण्यस्वामी।)

समष्टिव्यष्टिसर्जने इत्थमेवोपपत्तिर्दर्शिता ऊर्ध्वम्। तैत्तिरीय बृहदारण्यकोपनिषत्सु तथा मनुयाज्ञवल्क्यादि स्मृतिषु रामायणमहाभारतादि इतिहासेषु अष्टादशपुराणेष्वपि भूतानां सृष्टि सर्जने हेतुता प्रकटिता सा यथास्थाने द्रष्टव्या। एवं च चार्वाकमारभ्य व्यासदशतपर्यन्तं ये तत्ववेदिनो महान्तो ऋषयोऽभवन्, तैः श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणादिभिश्च जगच्छरीरसर्जने आकाशवायुतेजजलपृथ्वीनां तद्गतशब्दस्पर्शरूपरसगंधानां कारणता स्वीकृता। आयुर्वेदेऽपि इयमेवोपपत्तिरंगीकृता।

यथा चरकसंहितायां शारीरे प्रथमाध्याये—

"खादयश्चेतनाषष्ठाः धातवः पुरुषः स्मृतः।
चेतनाधातुरप्येकः स्मृतः पुरुषसंज्ञकः॥"

इति वैशेषिकमते नोक्त्वा पुनः सांख्यमते नाप्याह—

"मनोदशेन्द्रियाण्यर्थाः प्रकृतिश्चाष्टधातुकी।
इन्द्रियेणेन्द्रियार्थो हि समनस्केन गृह्यते॥"
एकैकाधिकयुक्तानि खादीनामिन्द्रियाणि तु।
पंचकर्मानुमेयानि येभ्यो बुद्धिः प्रवर्तते॥
हस्तपादं गुदोपस्थं जिह्वेन्द्रियमथापि वा।
कर्मेन्द्रियाणि पंचैव, पादौ गमनकर्मणि॥
पायूपस्थौ विसर्गार्थे हस्तौ ग्रहण धारणे।
जिह्वावागिन्द्रियं वाक्च सत्याज्योतिस्तमोऽनृता॥
महाभूतानि खं वायुरग्निरापःक्षितिस्तथा।
शब्दंस्पर्शं च रूपं च रसोगंधश्च तद्गुणाः॥

तेषामेको गुणः पूर्वो गुणवृद्धिः परे परे ।
पूर्वः पूर्वोगुणश्चैव क्रमशो गुणिषु स्मृतः ॥
खरद्रवचलोष्णत्वं भूजलानिलतेजसाम् ।
आकाशस्याप्रतीघातो दृष्टं लिंगं यथाक्रमम् ॥
खादीनि बुद्धिरव्यक्त महंकारस्तथाष्टमः ।
भूतप्रकृतिरुद्दिष्टा विकाराश्चैव षोडश ॥
बुद्धीन्द्रियाणि पंचैव पंचकर्मेन्द्रियाणि च ।
समनस्काश्च पंचार्था विकारा इति कीर्तिताः ॥"
"इति क्षेत्रं समुद्दिष्टं सर्वमव्यक्तवर्जितम् ।
अव्यक्तमस्य क्षेत्रस्य क्षेत्रज्ञं ऋषयो विदुः ॥"

सुश्रुतेऽपि शारीरस्थाने सर्वभूतचिंताध्याये "सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः संभव हेतुरव्यक्तं नाम । तदेकं बहूनां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठानं समुद्र इवौदकानां भावानां । तस्मान्महानुत्पद्यतेतल्लिंग एव । तल्लिंगाच्च महतस्तल्लिंग एवाहंकार उत्पद्यते । स च त्रिविधो वैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति ।

तत्र वैकारिकादहंकारात्तैजससहायात्तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते । तद्यथा । श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्घस्तोपस्थपायुपादमनांसीति । तत्र पूर्वाणि पंच बुद्धीन्द्रियाणि इतराणि पंचकर्मेन्द्रियाणि । उभयात्मकं मनः । भूतादेरपि तैजससहायात् तल्लक्षणान्येव पंचतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते । तद्यथा । शब्दतन्मात्रं, स्पर्शतन्मात्रं, रूपतन्मात्रं, रसतन्मात्रं, गंधतन्मात्रमिति तेषां विशेषाः शब्दस्पर्शरूपरसगंधास्तेभ्यो भूतानि व्योमानिलानलजलोर्व्यः । एवं एषा तत्त्वचतुर्विंशतिर्व्याख्याता । तत्र बुद्धीन्द्रियाणां शब्दादयो विषयाः । कर्मेन्द्रियाणां यथासंख्यं वचनादानानंदविसर्गविहरणानि । अव्यक्तं महान् अहंकारः पंचतन्मात्राणि चेत्यष्टौ प्रकृतयः शेषाः षोडशविकाराः यतोऽभिहितं पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इति । स एव कर्मपुरुषश्चिकित्साधिकृतः । तस्य सुखदुःखे, इच्छाद्वेषौ, प्रयत्नः, प्राणापानौ, उन्मेषनिमेषौ, बुद्धिः, मनः, संकल्पो, विचारणा, स्मृतिः, विज्ञानं, अध्यवसायो, विषयोपलब्धिश्च गुणाः ।

तदनन्तरं तस्य पुरुषस्य सात्विकराजसतामसगुणानुक्त्वा पंचमहाभूतोत्पन्न गुणान् कथयति । आन्तरिक्षास्तु, शब्दः शब्देन्द्रियं सर्व-

छिद्रसमूहो विविक्तता च। वायव्यास्तु, स्पर्शः स्पर्शेन्द्रियं सर्वचेष्टा-समूहः सर्वशरीरस्पन्दनं लघुता च। तैजसास्तु, रूपं रूपेन्द्रियं वर्ण-सन्तापौ भ्राजिष्णुता पक्तिरमर्षस्तैक्ष्ण्यं शौर्यं च। आप्यास्तु, रसो रसनेन्द्रियं सर्वद्रवसमूहो गुरुता शैत्यं स्नेहोरेतश्च। पार्थिवास्तु, गंधो गंधेन्द्रियं सर्वमूर्तिसमूहो गुरुता चेति। एवं शरीरं जगच्च पांचभौतिकमिति सिद्धम्।

अथ तस्य शरीरस्यारोग्यत्त्वं रोगता वा, रोगोपशमनं वा स्थितिर्वा, क्षयो वा वृद्धिर्वा, हानिर्वेत्येतत्सर्वं पंचमहाभूतायत्तमिति। यस्मात्तस्योत्पत्तिः तस्य वृत्तिः तस्य विहारस्तस्याहारः तस्यक्षयः एतानि सर्वाणि पंचमहाभूतोत्पन्नायां सृष्ट्यामेव भवंति।

यस्मात्पंचमहाभूतसमवायमुज्झित्वा क्षणमपि श्वसितुं वा निश्वसितुं, अत्तुं, वा पातु, मन्तुं वा कर्तुं, विहर्तुं वा शयितुं न शक्नोति, यस्मात्तानि महाभूतानि प्रत्याख्याय पदात्पदमपि गन्तुं न शक्नोति पुरुषस्तस्मात्तान्येवादिश्यास्मिन् आयुर्वेदे चिकित्साक्रम उक्तः।

तत्र पंचमहाभूतानि पृथ्वीजलतेजवाय्वाकाशाः, तत्र पृथ्वीजलार्थं आयुर्वेदे श्लेष्मा स्वीकृतः तेज एव पित्तं, वाय्वाकाशस्थाने वायुरेव गृहीतः। अथवा पृथिवी जड़ा, खं सुशिरात्मकं, अतः पृथ्व्याकाशावाश्रित्यापोतेजो वायवः सर्वव्यापारं कुर्वन्ति जगतः शरीरस्य च। व्यापारवन्ति खलु इमान्येव त्रीणि भूतानि। अतः कार्यकारणयेवालंब्य चिकित्साक्रम आरब्धः। यस्मात् खं शब्दमवकाशं च विहाय स्वकर्तृकेतर वाय्वादि भूतोपकारकापकारका इतरे गुणदोषा न दृश्यन्ते, तथा गंधकाठिन्य गुरुत्वविरहितेतराजलादिभूतोपकारकापकारकगुणाः पृथिव्यां न सन्ति, यस्मादयमन्त्यो भूतः। अन्त्य-भूतगंधकाठिन्यादिस्वगुणा न परेषां स्वकीया गुणाः। अन्त्य स्थित स्निग्धादि गुणा न स्वधर्माः उत, उत्तरभूतस्थितधर्मः अतस्ताभ्यां जलानिलतेजसां हानिर्वृद्धिर्वा न भवितुं शक्या। अपि तु जलानिल-तेजस एव स्वगुणैः स्वक्रियायोगैः आद्यन्तयोरपकारं करिष्यन्त्य एव चोपकारमपि। अतः त्रित्वावलंबनमेव चिकित्सा शास्त्रे उक्तम्। अपरं च, आहारनियोजितद्रव्याणि रसास्तेषां विपाकवीर्याणि यस्मात् पंचमहाभूतोत्पन्नानि, तथा च ऋत्वादि लक्षणः कालोऽपि त्रीण्येव

अत्रानिलतेजांसि वर्धयति क्षपयति च। तस्मादुपपन्नैव द्रव्यरसविपाकवीर्यकालाहाराधिष्ठानभूता चिकित्सा वातपित्तश्लेश्मोद्देशा।

अथ वात एव वायुः, पित्तमेव वन्हिः, कफ एव जलमिति तथा द्रव्यरसविपाकवीर्याहारकालादयः। इमानेव त्रीन् वर्धयन्ति क्षपयन्ति तन्निदर्शयामः। तेषां वातपित्तकफानां कृत्स्नदेहसंचारित्वं वाय्वाद्याप्यायननाप्यायितौ पृथिव्याकाशौ तत्क्षपणेन क्षपितौ चेति वर्णयामस्तदधीनत्वाच्छरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगस्य।

तत्र वात एव वायुरेतस्मिन्विषये न केषामपि विप्रतिपत्तिः स्यात्, तथापि, चरके वातकलाकलीयेऽध्याये सूत्रस्थाने सांकृत्यायनः—रूक्षशीतदारुणखरविशदाः षडिमे वातगुणा भवन्तीति संवादे, वायोर्विदो राजर्षि राह "वायुस्तंत्रयंत्रधरः, प्राणोदानसमानव्यानापानात्मा, प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानां, नियंता प्रणेता च मनसः, सर्वेन्द्रियाणामुद्योगकरः, सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढा, सर्वशरीरधातुव्यूहकरः, संधानकरः शरीरस्य, प्रवर्तको वाचः, प्रकृतिः स्पर्शशब्दयोः, श्रोत्रस्पर्शनयोर्मूलं, हर्षोत्साहयोर्योनिः समीरणोऽग्नेः दोषसंशोषणः, क्षेप्ता बहिर्मलानां, स्थूलाणुस्रोतसां भेत्ता, कर्ता गर्भाकृतीनां, आयुषोऽनुवृत्तिप्रत्ययभूतो भवत्यकुपितः। कुपितस्तु खलु शरीरे शरीरं नानाविधैर्विकारैरुपतपति, बलवर्णसुखायुषामुपघाताय मनोव्यावर्तयति, सर्वेन्द्रियाण्युपहन्ति, विनिहन्ति गर्भान्। विकृतिमापादयति, अतिकालं धारयति प्रकृति भूतस्य स्वत्वस्य लोकेषुचरतः कर्माणीमानि भवन्ति। तद्यथा, धरणीधारणं, ज्वलनोज्वालनं, आदित्यचंन्द्रनक्षत्रग्रहगणानां सन्तानगतिविधानं, सृष्टिश्च मेघानां, अपां च विसर्गः, प्रवर्तन स्रोतसां, पुष्पफलानां चाभिनिर्वर्तनं, उद्भेदनं चौद्भिदानां, ऋतूनां प्रविभागः, विभागो धातूनां, धातुमानसंस्थान व्यक्तिर्बीजाभिसंस्कारः, सस्याभिवर्धनं, विक्लेदोपशोषणं, अवैकारिकविकारश्चेति। प्रकुपितस्तु उत्पीडनं सागराणां, उद्वर्तनं सरसां, प्रतिसरणमापगानां, आकंपनं च भूमेराधमनमम्बुदानां, शिखरिशिखरावमंथनम्, उन्मथनमनोकहानां, नीहारनिर्हादपांशुसिकतामत्स्यभेकोरगक्षाररुधिराश्मशनि विसर्गः, व्यापादनं च षण्णां ऋतूनां, सस्यानामसंघातो, भूतानां चोपसर्गो, भावानां चाभावकरणं, चतु-

युगान्तकराणां मेघसूर्यानलानिलानां त्रिसर्गः। स हि भगवान् प्रभवश्चाव्ययश्च भूतानां भावानामभावकरः।

एवं वर्णितस्य वायोः शरीरे कर्म पंचधा भवति। सुश्रुते दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयेऽध्याये, तत्र प्रस्पन्दनोद्वहनपूरणविवेकधारणलक्षणो वायुः पंचधा प्रविभक्तः शरीरं धारयति वाग्भटे तु दोष भेदीये।

"पक्वाशयकटीसक्थि श्रोत्रास्थि स्पर्शनेन्द्रियम्।
स्थानं वातस्य तत्रापि पक्वाधानं विशेषतः॥
प्राणादिभेदात्पंचात्मा वायुः प्राणोऽत्र मूर्द्धगः।
उरः कंठचरोबुद्धि हृदयेन्द्रियचित्तधृक्॥
ष्ठीवनक्षवथूद्गार निःश्वासान्न प्रवेश कृत्।
उरः स्थानमुदानस्य नासानाभिगलांश्चरेत्॥
वाक्प्रवृत्तिप्रयत्नोर्जाबलवर्णस्मृतिक्रियः।
व्यानो हृदिस्थितः कृत्स्न देहचारी महाजवः॥
गत्यपक्षेपणोत्क्षेप निमेषोन्मेषणादिकाः॥
प्रायः सर्वाः क्रियास्तस्मिन् प्रतिबद्धाः शरीरिणाम्।
समानोऽग्नि समीपस्थ कोष्ठे चरति सर्वतः।
अन्नं गृह्णाति पचति विवेचयति मुंचति॥
अपानोपानगः श्रोणि वस्तिमेढ्रोरुगोचरः।
शुक्रार्तवशकृन्मूत्रगर्भनिष्क्रमणक्रियः॥

अविकृतो वायुः "उत्साहोच्छ्वासनिःश्वासचेष्टावेगप्रवर्तनैः, सम्यग्गत्या च धातूनामक्षाणां पाटवेन च। अनुगृह्णाति शरीरम्" मन्दोऽनिलः-"लिङ्गं क्षीणेऽनिलेऽङ्गस्य सादोऽल्पं भाषितं हितम्। संज्ञा मोहस्तथाश्लेष्मवृद्ध्युक्तामयसंभवः।" वृद्धस्तु वायुः-"कार्श्यकार्ष्ण्योष्णकामित्वकंपानाहशकृद्ग्रहान्। बलनिद्रेन्द्रियभ्रंशप्रलापभ्रम दीनताः।" कुरुते। प्रकुपितस्तु वायुः "स्रंसव्यासव्यधस्वापसादरुक् तोदभेदनं। संगांगभंगसंकोचवर्तहर्षणतर्षणम्। कंपपारुष्यसौषीर्यशोषस्पंदनवेष्टनम्। स्तंभः कषायरसतावर्णः श्यावारुणोऽथवा।" इति कर्माणि करोति।

इत्यनेन सृष्टिसंचारी महाभूतस्वरूप एव वायुर्देहान्तः संचारी वात इति आयुर्वेदे निगदित इति स्पष्टम्।

अथ पित्तमेव वन्हिरिति कथं चरके वातकलाकलीये अध्याये,-अग्निरेव शरीरे पित्तान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति, पक्तिमपक्तिं, दर्शनमदर्शनं, मात्रामात्रत्वमूष्मणः प्रकृतिविकृतिवर्णौ शौर्यं भयं क्रोधं हर्षं मोहं प्रसादं इत्येवमादीनि चापराणि द्वन्द्वानि ।

सुश्रुते व्रणप्रश्नाध्याये, तत्र जिज्ञास्यं, किं पित्तव्यतिरिक्तोऽग्नि-राहोस्वित् पित्तमेवाग्निरिति । अत्रोच्यते, न खलु पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निरुपलभ्यते, आग्नेयत्वात् । पित्ते दहनपाचनादिष्वभिवर्तमानेऽग्निवदुपचारः क्रियते अन्तरग्निरिति, क्षीणे ह्यग्निगुणे तत्समानद्रव्योपयोगादतिवृद्धे शीतक्रियोपयोगादागमाच्च पश्यामो न खलु पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निरिति ।

अथ तस्य स्थानलिंगक्रियाभेदवृद्धिक्षयप्रकोपा उच्यन्ते ।
वाग्भटे—"नाभिरामाशयः स्वेदो लसीका रुधिरं रसः

दृक्स्पर्शनं च पित्तस्य नाभिरत्र विशेषतः ।" (इति स्थानानि)
"पित्तं सस्नेहतीक्ष्णोष्णं लघुविस्रं सरंद्रवम् ॥" (इति लिंगानि)
"पित्तं पञ्चात्मकं तत्र पक्वामाशयमध्यगम् ।
पंचभूतात्मकत्वेपि यत्तैजसगुणोदयात् ॥
त्यक्त द्रवत्वं पाकादि कर्मणानलशब्दितम् ।
पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक् तथा ॥
तत्रस्थमेव पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम् ।
करोति बलदानेन पाचकं नाम तत्स्मृतम् ॥
आमाशयाश्रयं पित्तं रंजकं रसरंजनात् ।
बुद्धिमेधाभिमानाद्यैरभिप्रेतार्थसाधनात् ॥"
"साधकं हृद्गतं पित्तं रूपालोचनतः स्मृतम् ।
दृक्स्थमालोचकं त्वक्स्थं भ्राजकं भ्रजनात्त्वचः ।" (इति भेदाः)

पक्त्यूष्मदर्शनैः क्षुत्तृड्रुचिप्रभामेधाधीशौर्यतनुमार्दवैरविकृतं सत् पित्तं शरीरमनुगृह्णाति ।

पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक्क्षुत्तृड्दाहाल्पनिद्रताः । वृद्धं सत् पित्तं एतानि लक्षणानि करोति ।

क्षीणं पित्तं, मन्दोऽनलः, शीतं प्रभाहानिः इत्यादिकं करोति ।

प्रकुपितेन पित्तेन दाहरागोष्मपाकिताः स्वेदः क्लेदः स्रुतिः कोथः

सदनं मूर्च्छनं मदः । कटुकाम्लौ रसौ वर्णः पाण्डुरारुणवर्जितः । इति कर्म भवति ।

इति पित्तविवरणे अग्निपित्तकार्यसाम्यादग्निरेव पित्तं पित्तमेवाग्निरिति सिद्धम् ।

अथ श्लेष्मैव जलमिति कथ्यते । चरके वातकलाकलीये सोम एव शरीरे श्लेष्मान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति । तद्यथा । "दार्ढ्यं शैथिल्यं उपचयं कार्श्यं उत्साहमालस्यं वृषतां क्लीबतां बुद्धिं मोहं एवमेव चापराणि द्वन्द्वानीति" अत्र सोमोजलदेवता इति चक्रः । सोमोऽब्धातुरिति गंगाधरः । सुश्रुते "संधिसंश्लेषण स्नेहनरोपणपूरणतर्पण बलस्थैर्य कृच्छ्लेष्मा पंचधा प्रविभक्त उदककर्मणानुग्रहं करोति । अथ श्लेष्मणो लक्षण कार्यस्थान भेद कोपक्षय वृद्धयः कथ्यन्ते ।

'स्निग्धःशीतो गुरुर्मन्दः श्लक्ष्णोमृत्स्नः स्थिरः कफः ।' इति लक्षणं । स्थिरत्व स्निग्धत्व संधिबंधनमादिभिर्देहमनुकरोति ।

"उरः कंठशिरः क्लोमपर्वाण्यामाशयोरसः
मेदोघ्राणं च जिव्हा च कफस्य सुतरामुरः ।" (इतिस्थानानि)
"श्लेष्मातु पंचधोरस्थस्य त्रिकस्य स्ववीर्यतः
हृदयस्याम्नवीर्याच्च तत्स्य एवांबुकर्मणा ।"
"कफधाम्नां च शेषाणां यत्करोत्यवलंबनम्-
अतोऽवलंबकःश्लेष्मा"—

यस्त्वामाशय संस्थितः । सोम्नसंघातक्लेदनात् क्लेदकः, रसबोधनात् रसनास्थायी बोधकः, शिरः संस्थोऽक्षितर्पणात्तर्पकः,

संधिसंश्लेषात् संधिषुस्थितः श्लेषकः ।
"श्लेष्मणः स्नेहकाठिण्यकण्डुशीतत्वगौरवम् ।
बंधोपलेपस्तैमित्यशोफापक्त्यतिनिद्रताः ॥
वर्णःश्वेतो रसौस्वादुलवणौ चिरकारिता ।" (इतिवृद्धिः)
"श्लेष्माशयानां शून्यत्वं हृद्रवश्लथसंधिता ।" (इतिक्षयः)
"श्लेष्माग्निसदन प्रसेकालस्य गौरवं
श्वैत्यशैत्यश्लथांगत्वं श्वासकासाति निद्रताः ।" (इतिकोपः)
"इति प्रायेण दोषाणां स्थानान्यविकृतात्मनां
व्यापिनामपि जानीयात्कर्माणि च पृथक् पृथक् ।"

इत्यनेन श्लेष्मा एव जलं, जलकार्यकरणात् ।

अथ यान्यन्यानि वातपित्तकफानां वाय्वग्निजलत्वापादकानि वचनानि तानि संक्षेपतउद्धरामः । चरके शारीरस्थाने सप्तमाध्याये—

तत्र यद्विशेषतः स्थूलं स्थिरं मूर्तिमत् गुरुखरकठिन मङ्ग नखास्थिमांसचर्म वर्चः केशश्मश्रुनखलोमकंडरादि तत्पार्थिवम्, गंधो घ्राणं च ।

यद्द्रवसरमंदस्निग्ध मृदुपिच्छिलरसरुधिर वसा कफ पित्तमूत्र स्वेदादि तदाप्यं रसो रसनं च । यत्पित्तमूष्मा च यो पाचमा शरीरे तत्सर्वमाग्नेयं रूपं दर्शनं च । यदुच्छ्वास प्रश्वासोन्मेष निमेषाकुंचन प्रसारणगमनप्रेरण धारणादि तद्वायवीयं स्पर्शः स्पर्शनं च । यद्विविक्त मुच्यते महान्ति चाणूनि च स्रोतांसि तदंतरिक्षं शब्दः श्रोत्रं च ।

तथा च चरके चतुर्थाध्याये शारीरके 'तत्रास्याकाशात्मकं शब्दः श्रोत्रं लाघवं सौक्ष्म्यं विवेकश्च । अग्न्यात्मकं रूपं दर्शनं प्रकाशः पक्तिरौष्ण्यम् । अवात्मकं रसो रसनं शैत्यं मार्दवः स्नेहः क्लेदश्च । पृथिव्यात्मकोगंधः घ्राणं गौरवं स्थैर्यं मूर्तिश्च । एवमयं लोकसंमतः पुरुषः, यावन्तो हि लोके भावविशेषास्तावन्तः पुरुषे यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोके इति बुधास्त्वेवं द्रष्टुमिच्छन्ति ।

"वा गतिगंधनयो" रितिधातुर्वातीति वायुः । "तप संतापे" तपति पचतीति पित्तम् । "श्लिष आलिंगने" श्लिष्यतीति श्लेष्मा इति व्युत्पत्तिः सुश्रुते ।

तथाच,—"विसर्गादान विक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा ।
धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा ॥"

केवलं वैद्यशास्त्रे एव कफपित्तानिला एव जलाग्निवायव इति वर्णितमिति न अपि तु, याज्ञवल्क्यस्मृतावपि यतिधर्मप्रकरणे वर्णितमस्ति ।

तद्यथा,—"प्रथमे मासि संक्लेदभूतो धातुविमूर्च्छितः ।
मास्यर्बुदं द्वितीये तु तृतीयेऽङ्गेन्द्रियैर्युतः ॥"

इति गर्भोत्पत्ति वर्णने गर्भस्य पंचमहाभूतकार्य विवरणे—
"आकाशाल्लाघवं सौक्ष्म्यं शब्दं श्रोत्रं बलादिकम् ।
वायोश्च स्पर्शनं चेष्टा व्यूहनं रौक्ष्यमेव च ॥

पित्तात्तु दर्शनं पक्तिमौष्ण्यं रूपं प्रकाशिताम्।
रसात्तु रसनं शैत्यं स्नेहं क्लेदं समार्दवम्॥
भूमेर्गंधस्तथा घ्राणं गौरवं मूर्तिमेव च।
आत्मा गृह्णात्यजः सर्वं तृतीये स्पंदते ततः॥" इति।

केवलं मानुषायुर्वेदे एव धातवः दोषाः मलाश्च शरीर सुस्थितिदुःस्थितिकरा इति न अपि तु हस्त्यायुर्वेदे शल्यस्थाने षष्ठाध्याये रोमपादोऽगराजा पृच्छतिस्म पालकाप्यं—भगवन्? किंज्ञात्वा वैद्यो भवति, एतन्मे व्याख्यातुमर्हसि। ततः प्रोवाच भगवान् पालकाप्यः, इहभोः पंच, सप्त, त्रीन्, द्वौ, चतुरो, नव, चतुर्दश, चतुरश्च ज्ञात्वा भिषग्भवेत्।

तत्र पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशम्। पंचगुणा पृथ्वी चतुर्गुणा आपः त्रिगुणं तेजः। द्विगुणो वायुः। एकगुमाकाशं। तत्र पृथ्वी धारणे, आपः क्लेदने, तेजः पाचने, वायुर्व्यूहने, आकाशमवकाश दाने। तस्मात्पंचवर्गोऽयं प्रधानः, ततोऽभिप्रणीतं सर्वं दन्तिनां। तत्र खमित्याकाशः। आकाशात् शब्दः सौषिर्यंच, अनिलात् स्पर्शः प्राणादयश्च, दृष्टिः पाकः प्रकाशः ऊष्मा पित्तं च तेजसः, स्नेहः क्लेदः शैत्यं रसः रसनं चोदकात्, घ्राणवान् गंधः। संघातश्च भूमेः। तत्र बलतृप्त्यपचयकरः श्लेष्मा, पित्तमाहारं पचति, वायुश्चेष्टा प्रवर्तकः, तैर्हि शरीरं धार्यते। समैः साम्यं वैषम्यं विपरीतैरिति।

(हस्त्यायुर्वेदे, आनंदाश्रमीये, पृष्ठं २८७)

एतावता विवरणेन वातपित्तकफा एव वाय्वग्निजलानि वाय्वग्निजलानां गुणाश्च कार्याणि तान्येव वातपित्तकफानां। शरीरस्वास्थ्यं शरीरास्वास्थ्यं तेषामेवायत्तम्। इति एतद् व्युत्पादितं तथा च तेषां भेदाः स्थानानि तत्साम्यावस्था तद्वृद्धिस्तत्प्रकोपस्तत्क्षयश्चेति।

अतः परं पंचमहाभूतोत्पन्न द्रव्याणि रसाः विपाकाश्च वीर्याणि आहारः कालश्च यथा वातपित्तकफानेव ह्रासयन्ति वर्धयन्ति च साम्यावस्थां नयंति तत्पश्यामः। तत्र द्रव्याणि, वाग्भटे—

द्रव्यमेव रसादीनां श्रेष्ठं ते हि तदाश्रयाः।
पंचभूतात्मकं तत्तु क्ष्मामधिष्ठाय जायते॥

अम्बुयोन्यग्निपवननभसां समवायतः ।
तन्निर्वृत्तिर्विशेषश्च व्यपदेशस्तु भूयसा ॥

द्रव्याणामाधारः पृथ्वी, कारणं सलिलं, तथा इदं द्रव्यमस्माद् द्रव्याद्भिन्नमिति विशेषः । अग्निपवननभसां समवायतः । अतः सर्वं द्रव्यं पंचभूतात्मकं । यद्यपि सर्वाणि द्रव्याणि व्यक्तिशः पंचमहाभूत्मताकानि तथापि यस्मिन् द्रव्ये यद्भूतं विशेषतयानुगतं तत्तेन भूतेन व्यपदिश्यते ।

अतः कानि चिद्द्रव्याणि पार्थिवानि एवं आप्यानि आग्नेयानि वायव्यानि नाभसानि च । तत्र प्रत्येक भूतोत्थद्रव्यगुणाः कथ्यन्ते तत्र पार्थिवं द्रव्यं गुरु स्थूलं स्थिरगंधगुणोल्वणं गौरवस्थैर्यसंघातोपचयकरम् आप्यं द्रवशीतगुरुस्निग्धमन्दसान्द्र रसोल्वणं स्नेहनविष्यन्दक्लेदप्रल्हादवंधकृत् । आग्नेयं द्रव्यं रूक्षतीक्ष्णोष्णविशदसूक्ष्मरूपगुणोल्वणं दाहभावर्णप्रकाशपचनात्मकम् । वायव्यं द्रव्यं रूक्षविशदं लघुस्पर्शगुणोल्वणं रौक्ष्यलाघव वैशद्यविचारग्लानिकारकम् । नाभसं सूक्ष्मविशदलघुशब्दगुणोल्वणं सौषीर्यलाघवकरम् । एवं जगति अनौषधं द्रव्यं न विद्यते, अस्तु ।

द्रव्याणां सेवनेन स्वभूतोत्पन्नं द्रव्यं स्वभूतगुणास्वगुणं शरीरस्थित स्वभूतसहायकमसहायकं च स्यात् अत्र न वक्तव्यता ।

अतः क्रमात् पार्थिवं आप्यं तैजसं वायव्यंनाभसं द्रव्यं शरीरस्थिताकाशवायुतेजोजलभूमिवर्धकं क्षपणकं च भवेत् न्यूनाधिकसमप्रमाणेन भक्षितम् ।

तथापि द्रव्याणामेतत्कर्म, रसवीर्यविपाकादीनं सहायसापेक्षद्रव्यस्य यतः रसवीर्यविपाकप्रभावविरहितं द्रव्यं नास्तीति हेतोः रसादीनामपि निरीक्षणं क्रमप्राप्तमेव ।

तत्र रसाः षट् स्वाद्वम्ललवणतिक्तकटुकषायास्तेषां निर्निमित्तु भूमिजलाभ्यां मधुरः, भूम्यग्निभ्यामम्लः, जलाग्निभ्यां लवणः, आकाशवायुभ्यां तिक्तः, अग्निवायुभ्यां कटुः, भूमिवायुभ्यां कषायः ।

वाग्भटः—"तत्राद्या मारुतं घ्नन्ति त्रयस्तिक्तादयः कफम् ।
कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये तु कुर्वते ॥"

अस्यायमर्थः मधुरो वातपित्तघ्नः श्लेष्मकरः अम्लः वातघ्नः कफ-

पित्तकरः। लवणः वातघ्नः कफपित्तकरः। तिक्तः कफपित्तघ्नो वातकरः। कटुः कफघ्नो वातपित्तकरः। कषायः कफपित्तघ्नो वातकरः।

यद्यपि पंचभूतजनित द्रव्यानुगताः पंचभूतोत्पन्नाः रसाः तथापि वातपित्तकफवर्द्धका तथा तत्क्षयकरा एव द्रष्टव्या न पृथ्व्याकाशवृद्धि-क्षयकरा इति।

रसाः अपि विपाकाधीनकार्याः सन्ति ते विपाकाअपि त्रिविधाः, यथा—

"त्रिधाविपाको द्रव्यस्य स्वाद्वम्लकटुकात्मकः।
जाठरेणाग्निनायोगाद्यदुदेति रसांतरः।
रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः॥"

स विपाकः षण्णां रसानां स्वाद्वम्ललवणतिक्तोष्णकषायाणां त्रिधैव भवति स्वादुलवणरसविपाकः स्वादुः, अम्लरसविपाको ऽम्लः, तिक्तोष्णकषायाणां कटुः। स्वाद्वम्लकटुकात्मको विपाकः। मधुराम्ल कटुरसफलः। अतएवोक्तं, "रसैरसौ तुल्यफलः।" एतेन मधुरोविपाकः वातपित्तघ्नः कफकरश्च, अम्लः वातघ्नः कफपित्तकरः, कटुः कफघ्नो वातपित्तकरः, लवणतिक्तकषायाणां स्वकार्यकरणं विपाकावस्थायां मधुरकटुवत् इति सिद्धम्। सुश्रुते तु, मधुरः कटुश्च पाको द्विविधा भवति। तत्र मधुरो गुरुविपाकः कटुर्लघुविपाकः पृथिव्यापश्च गुर्व्यः शेषाणि लघूनि, इत्यनेनापि मधुरः पाकः गुरुत्वात्कफं वर्धयति, वातपित्ते क्षिणोति, कटुश्च लघुत्वाद्वातपित्ते वर्धयति कफं हिनस्ति, एवं पाको त्रिविधो वा द्विविधो वा त्रयाणामेव वातपित्तकफानां वृद्धिह्रासकरः।

अथ—वीर्यं पुनर्वदन्त्येके गुरुस्निग्धहिमं मृदु।
लघुरूक्षोष्णतीक्ष्णं च तदेवं मतमष्टधा॥

तत्र ये गुरुस्निग्धहिममृदुवीर्यास्ते कफं वर्धयन्ति। हिमलघुरूक्षवीर्यास्ते वातं। उष्णतीक्ष्णलघुवीर्यास्ते पित्तं वर्धयन्ति। तथा गुरुस्निग्धहिम मृदुवीर्याः पित्तं क्षपयन्ति। गुरु स्निग्धमृदूष्णतीक्ष्ण-वीर्याः वातम्। उष्णतीक्ष्णलघुरूक्षवीर्यास्ते कफं क्षपयन्ति।

केचन उष्णं शीतं द्विधैव वीर्यमाचक्षते। तत्रापि, शीतवीर्येण कफवातवर्धनं पित्तक्षपणं समागतमेव, कफवातयोः शीतत्वात्।

पित्तस्यौष्ण्याच्च उष्णवीर्येण पित्तवृद्धिः कफवातहानिः संप्राप्ता, उष्णत्वात्पित्तस्य वातकफयोरनौष्ण्यात्। वायुः लाघवशैत्यरौक्ष्याभ्यां आकाशाप्यायनं करोति, कफस्तु मन्दगुरुतया भूमेः कार्यवृद्धिं करोति, अतः युक्तमेव वातपित्तकफानां नाम वाय्वग्निजलानां कार्ये भूम्याकाशकार्ययोरन्तर्भावः, अस्तु।

कालोऽपि शीतोष्णवर्षलक्षणः षडृतुः वातपित्तकफानां चयप्रकोप प्रशमनानि करोति, "उष्णेनयुक्ता रूक्षाद्या वायोः कुर्वन्ति संचयं। शीतेन कोपमुष्णेन शमं स्निग्धादयो गुणाः।"

उष्णेन ग्रीष्मजन्योष्मणा तज्जन्येनैव रौक्ष्येण रूक्षादयोगुणावायोः संचयं कुर्वन्ति ग्रीष्मे, वर्षासमुत्थेन शैत्येन रौक्ष्येण च ते रूक्षादयः वर्षासु वायुकोपं कुर्वन्ति, वर्षाशैत्यात् शीतगुणेन युक्तास्तीक्ष्णाद्याः पित्तचयं कुर्वन्ति वर्षासु, उष्णेन शरदुद्भवेन ते तीक्ष्णाद्याः कोपं कुर्वते शरदि, तथा हेमन्ते शीतोपसंहिताः मन्दस्निग्धादयः पित्तोपशमं कुर्वते, शरदुद्भवस्निग्धोष्णादिगुणा वातोपशमं कुर्वन्ति शरदि, हेमन्त समुद्भवेन शीतेन स्निग्धाद्या गुणाः कफसंचयं कुर्वते शिशिरे, त एव स्निग्धाद्या उष्णेन वसंत समुद्भवेन वसंते कफकोपं कुर्वते, तेनैव उष्णेन युक्ता रूक्षादयः ग्रीष्मसमुत्थाः कफशमनं ग्रीष्मे। कुर्वते। इत्यनेन कालस्य वातपित्तकफानां चयप्रकोपप्रशमकत्वमुक्तम्। अत्र चयः स्वधाम्नि एववृद्धिः, प्रकोपस्तु स्थानांतरगामिता, संशमनं साम्यावस्था, न तु क्षयः।

अथ आहारोऽपि षड्रसात्मकः द्रव्यमूलः, वातपित्तकफानेवोत्पादयति क्षपयति च। यथा 'आदौषड्रसमप्यन्नं मधुरी भूतं फेनीभूतं सत् कफमीरयेत्, ततः आमाशयाद्विदाहादम्लतां गतं सत् पित्तं कुर्यात्, पुनरामाशयात् च्युतं अग्निनाशोषितं पक्वं पिंडितं कटु च सत् मारुतं कुर्यात्।

अथ दूष्याः "रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः", तेषु दूष्येषु वातपित्तकफाधिष्ठानं स्थितं तत्रास्थिनि स्थितो वायुः पित्तं तु स्वेदरक्तयोः। श्लेष्माशेषेषु (अर्थात्) रसमांसमेदमज्जाशुक्र मूत्रपुरीषेषु स्थितरतः आश्रयाश्रयिणां मिथः यदेकस्य तदन्यस्य वर्धनक्षपणौषधम्। अस्थिमारुतौ वर्जयित्वा।

अतः दूष्यदोषाणां साधारणीसमाना एव चिकित्सा प्राप्ता अथ देशोऽपि त्रिविधः जांगलानूपसाधारणाख्यः। जांगलो वातोल्वणः अनूपः कफोल्वणः। अत्र जांगले पित्तगुणयुक्तत्वमध्यवसेयम्। तत्र जांगलो देशः अल्पोदकतरुपर्वतः। आनूपः, प्रचुरोदकवृक्षयोनिः, दुर्लभातपः। अनेन देशोऽपि वातपित्तकफवृद्धिह्रासकरोऽस्तीति दृश्यते।

शारीराग्निरपि चतुर्धा। एकः समः स तु साम्यावस्थास्थित-वातपित्तकफसंभूतः, द्वितीयः कफाधिक्यान्मन्दः, तृतीयः पित्ताधि-क्यात्तीक्ष्णः, चतुर्थो वाताधिक्याद्विषमः।

प्रकृतिरपि त्रिप्रकारा वातिकी, पैत्तिकी, कफजा चेति। तत्प्रकृति-ज्ञानं चरकसुश्रुतवाग्भटादिषु यथास्थानं ज्ञातव्यम्, नेह विस्तरभया-ल्लिखामः।

वयोऽपि बाल्यतारुण्यवार्द्धक्यभेदेन त्रिप्रकारकम्। तत्र बाल्ये कफकोपः। तारुण्ये पित्तकोपः। वार्द्धक्ये वातकोपः। तथा दिवा प्रभाते कफाधिक्यं मध्यान्हे पित्ताधिक्यं अपराण्हे वाताधिक्यं। सायं-काले कफकोपः। पूर्वरात्र्यां पित्ताधिक्यं उत्तररात्र्यां वाताधिक्यम्। एतावता प्रपंचेन वातपित्तकफानां साम्यवृद्धिहानिकोपकरणे यथा पंचमहाभूतोत्पन्न द्रव्यरसविपाकवीर्यादयस्तथा दूष्यदेशवयं काला-नलप्रकृतयश्च यथा कारणका भवन्ति तत्साकल्येन प्रपंचितम्।

तथा एतैः कारणैः कुपितवृद्धहीनवातादयो दूष्यदेशवयकाला-नलप्रकृतिषु विकारमुत्पादयन्ति तदपि प्रपंचितमेव।

दुष्टानां वातादीनां दोषोत्पादने दूष्यदेशादिवित्सहितान्या(?) श्रया-भावात्। एतेन अन्योन्यैः समैः साम्यं अन्योन्यैर्विषमैर्वैषम्यं भवति शरीरे। साम्यमेवारोग्यं वैषम्यमेव रोगता।

अतः परं कतिचितामाक्षेपाणां विचारः क्रियते। वाते कफे च नाक्षेपः संभवेत्, परं पित्ते आगच्छेदाक्षेपः। यथा—यदि पित्तमेव वन्हिस्तद्द्रवं सस्नेहं विस्रं कथं भवेत्, न दृश्यते तेजसि द्रवता सस्नेहता विस्रता वा। तथा च, यदि पित्तमेव वह्निस्तदापित्तजमग्नि-मांद्यं कथं स्यात्, न वन्हिर्वन्हिक्षयकृद्दृष्ट इति। अत्रोच्यते।

तत्र शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगो हि जीवितं, तदेव चिकित्सा-विषयं, तस्यैवारोग्यचिंता रोगहानिश्च कार्या। तज्जीवितं वा जीववान् पुरुषः गर्भावस्थांगतो मातृजसवर्स्वेनपरिपोषितो वर्द्धते तदा-रभ्यैव तस्य पोषो आहारायत्तः। गर्भे मातुराहारेण तस्याहारो निर्व-र्त्तते। ततो गर्भोत्क्रमणानंतरं स्वकृताहारेण। आहारं विना न क्षण-मपि जीवितुं शक्नोति। न जन्मना सहैवानीता तृप्तिस्तेन, येनाहारा-वश्यकता समाप्ता। एतत्तु न दृश्यते। अतएवाहाराधीना तस्य जीवितयात्रा, इत्यनेन किं निर्गलितं, तस्मिन् जीवतिपुरुषे तं जीव-यमानानि कार्यानुमेयानि पंचमहाभूतानि स्वकार्यं व्यवस्थया कर्तुं बहिर्जगत्स्थितपंचमहाभूतसाहाय्यमपेक्षन्ते, तदुत्पन्नद्रव्याद्याहारमि-षेण।

यदि देही भूतानि इमानि पंचभूतानि पुरुषजन्मना साकमेव यावदायुरिमं पुरुषं यन्त्रितुं बलमानयेरन् तदा क्षुत्पिपासादीनि सहजोत्पन्नानि पीडाकराणि अशनपानाद्यपेक्षीणि द्वन्द्वानि न भवेयुः। यदीमानि द्वन्द्वानि भवन्तीति प्रत्यक्षं दृश्यते, तदा इदमेवागतं यत्पुरुष-कोशस्थितानि इमानि महाभूतानि बाह्यबलापेक्षीणि आहारादिरूपे-णेति। तस्मादाहारायत्तमिदं जीवितम्। स चाहारो पंचमहाभूतोत्पन्ना-यात्राह्यसृष्टेः सकाशात् प्राप्तव्यः। अत्र आहारः केवलं खाद्यमेवेति न ग्राह्यमपि तु यस्य यस्य द्रव्यस्य शरीरयन्त्रे न्यूनता तस्य तस्या-हरणं तेन न्यूनतायाः पूरणं इति विस्तृतार्थेनाहारस्य ग्रहणं कार्यम्। स आहारो द्रव्यायत्तत्वाद्द्रव्यमेव श्रेष्ठम्। तत्र द्रव्यं पृथ्व्यधिष्ठा-नभूतं जलयोनि षड्रसयुक्तं भक्षितं किं भवति येन तद्देहोपयोगिकं स्यात्। तस्य भक्षणानन्तरं द्रवावस्था भवति मधुरो रसश्चतदेव जलं कफसंज्ञया सामान्येनोक्तम्। तद्द्रवावस्थाप्राप्तमेव। मधुररसयुक्तं द्रव्यं अग्निनाम्लतां ऊष्मतां च नीतं अम्लोष्णसंयुक्तं तत् पित्तमिति कथ्यते, सामान्येनाभेदोपचारात् तदेव पित्तं द्रवं विस्रं सरं सस्नेहं नान्यत्, तदेव पाचकाख्यं नान्यत्। अस्मिन् पित्ते द्रवता चोष्णता च दृश्यते। जलाग्निसंयोग एवायम्। तथापि जलेऽग्नेः कार्यकरण-प्राबल्यात् अग्निगुणवत्त्वात् इदं यत् द्रवसरविस्राष्णरूपं पित्तमीष-त्स्नेहयुक्तं सोऽग्निरेव। ततः सोऽम्लरसो कटुरसात्मकः शुष्कः पिण्डितः वातकार्येण वातमेव करोति। अयमेवकफः इदमेव पित्तं वायमेव

यातः सर्वशरीरस्थितवातपित्तकफानां नाम वाय्वग्निजलानां तथा तेषां गुणानां च कार्याणां सामर्थ्यं ददाति तत्तत्कार्य द्वारा। च पर कोषवत् स्थिताः इमे सद्य आहारजनितवातपित्तकफाः शरीरस्य च तत्स्थितपंचमूलाकार्यस्य च सातत्यं रक्षन्ति।

उक्ता पित्तस्य द्रवविस्रसरसस्नेहता। अतः पित्तकृताग्निमान्द्या-दयो विकाराः कथमुत्पद्यन्ते तद्ब्रूमः पुरुषेण एतावानाहारः कृतः यः संजातमधुरो रसावस्थायां गतः पूर्वस्थितपाचकपित्तेन वाग्निना समग्रं न पच्यते। अग्न्यपेक्षया रसस्याधिक्यातः यद्यपि पित्तेन समग्रो न पाचितस्तथापि अर्धं वार्धार्धं वा पाचित एव स्वशक्त्या, यत्कार्यद्रव्यं तत्कार्यशीलमेव। अतोऽर्धार्धार्धपाचिते तस्मिन् रसे-ऽग्नितास्म्लताचागता। तथापि समग्रपरिपाकाभावात् जाठराग्नि सामर्थ्यापेक्षया संजाताधिकसामर्थ्यः सदुष्टोरसस्तत्रस्थमग्निं हत्वा-जीर्णादीन् पित्तगुणयुक्तान् विकारान् करोत्येव। किंचित् पित्तगतध-र्मवत्त्वात्। यथा उष्णं जलं वह्निं नाशयति च त्वचं दहति इतिवत्। यत्तु रसस्य मलः कफः, रक्तस्य च पित्तं मलः, तौ मलौ नेमौ धातु-दोषरूपौ यौ मलरूपौ पित्तकफौ तौ हेयस्वरूपौ यौ सर्वेऽपि लोकाः ष्ठीवनकर्मणा बहिर्निस्सारयन्ति। तयोर्मलयोः पित्तकफेतिसंज्ञा द्रवस्नेहसरविस्राम्लाद्युभयगुणयोगात्।

भवतु, तथा च पित्तजाग्निमान्द्ये चिकित्सापि पित्तशमनीपाचनी च क्रियते, यत्पाचनं तदुष्णवीर्यमेव, अस्तु।

यस्माद्वातपित्तकफा एव पंचमहाभूतानि। यस्माच्चेदं जगत्पंच महाभूतोत्पन्नं। यस्मात्सर्वमिदं द्रव्यरसादि तद्भूतगुणमयं। चायं पुरुषस्तदुत्पन्नस्तस्य जीवितमपि यस्मादनायत्तं। तथा यस्यात्तस्या-रोग्यं रोगता च पंचमहाभूत विकृत्यविकृत्यधीना। तौ च विकृत्य-विकृती अपि द्रव्यरसाहारायायतो च दूष्यदेशबल कालानलवय प्रकृ-तिसत्वसात्म्यायत्ते। यस्माच्च एतानि द्रव्यादीनि दूष्यादीनि च वातपित्तकफानेव वर्द्धयंति क्षपयन्ति समानतां प्राप्नुवन्ति। यस्मा-द्वातपित्तकफैरयं पुरुषो धार्यते पाल्यते दूष्यते रुज्यते। यस्माच्च, वातपित्तकफोष्मणैव उपक्रमितो भवत्यरोगश्च तस्माद्वातपित्त-कफायत्तैवचिकित्सा। यतः चिकित्सा—

"द्रव्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः ।
सत्त्वं सात्म्यं तथाहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः ॥
सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषध निरूपणे ।
यो वर्तते चिकित्सायां न स स्खलति कुत्रचित् ॥
दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेककारणम् ।
यथापक्षी परिपतन् सर्वतः सर्वमप्यहः ॥
छायामत्येति नात्मीयां यथावत्कृत्स्नमप्यदः ।
विकारजातं विविधं त्रीन् गुणान्नातिवर्तते ॥
तथा स्वधातुवैषम्यं निमित्तमपि सर्वदा ।
विकारजातं त्रीन् दोषान्—"

इति विचार्य फलिता भवति । तर्हि सिद्धमेव त्रिदोषतत्त्वस्य चिकित्सोपयोगित्वं । एतदेव त्रिदोषतत्त्वं यत् वातपित्तकफानां नाम पंचमहाभूतानां साम्यवैषम्यकार्यकारित्वम् एतदेवायुर्वेदस्यायुर्वेदत्वम् ।

ये केचन शरीरे आयुर्वेदोक्तं त्रिदोषतत्त्वं नास्तीति कथयन्ति तैश्चार्वाकादि बादरायणपर्यंतमहर्षिप्रोक्तं जगतः शरीरस्य च पंचमहाभूतोपसृष्टत्वं पंचमहाभूतोपवृत्तित्वं तत्कृतविनाशित्वं च निराकार्यम् । यावत्कालपर्यन्तं तेषां विभूतिमतां महापुरुषाणां एतन्मतं न नष्टं, न वापि लुप्तं, न वा केनापि नाशितं लोपितं वा, तावदस्मदायुर्वेदीय त्रिदोषास्तित्वं सिद्धमेव । नश्वः परश्वो वा तस्यान्तो भविता केषां च न फूत्कारवतां क्षुद्रफूत्कारेण ।

अतएव चार्वाकमारभ्य बादरायण पर्यन्त मतोद्धारणे च त्रिदोषतत्त्वान्वेषणे यथा मत्या कृतो यत्नः स भवद्भिः क्षमाशीलैर्विवेकिभिः साधुभिर्द्रष्टव्यो ग्राह्यश्च गुणलवतः वर्द्धितोत्साहश्चायंजनः क्षन्तव्यश्च भवतां समयग्रहणसाहसात्, बहुलदोषकृतापराधादिति विज्ञाप्य विरम्यते ।

ब्रह्मचर्य्यस्योपकारित्वम् ।

(वैद्यराज नारायण शर्मणा लिखितम्)

अस्मिन् किल मनुष्यजीविते कार्यसम्पादनाय (ऐहिलौकिकं कार्यं पारलौकिकं वा भवतु) शारीरिकस्य मानसिकस्य च बलस्यावश्यकता वर्तते । उभयमप्येतद् बलं ब्रह्मचर्यत एव लभ्यते । अतः स्वजीवितं सफलयितुं स्वमनोरथान् पल्लवयितुञ्च समुचितमेतत् समस्तस्य लोकस्य यद् ब्रह्मचर्यपरिपालनं नाम । सुष्ठूक्तं किल सुश्रुताचार्येण,—

"शुक्रायत्तं बलं सर्वमिति"

वीर्यमेव हि मानसिकञ्च शारीरिकञ्च बलमेधयति वस्तुतोऽस्मदीयेष्वेतेषु शरीरेषु वीर्यमिदमस्ति सारः पदार्थः । कथमपि शरीरतः २५ वर्ष परिमिते वयसि न निःसरेत्, ऋषिकुलादिषु वयं भक्त्या गुरुभ्यो विद्यां लभेमहि, इत्येवहि ब्रह्मचर्यं नाम । तत्पालयिता चोच्यते ब्रह्मचारीति । अतएव समुचितमिदं यन्नाम ब्रह्मचारिणो ध्यानं वीर्यरक्षायां विद्याप्राप्तौ च समादरेण भक्त्या च भवेत् । यदि एकस्मिन्नपि ध्यानं न भवेत्तर्हि न यथार्थं स ब्रह्मचारिपदाभिधेयतामवगाहेत, न च तस्य शारीरिकं मानसिकञ्चेत्युभयविधं बलं पूर्णतां प्राप्स्यति ।

अयि ! वीर्यमस्ति सारभूतः पदार्थः सर्वस्व, इति प्रागेवावेदितवांनस्मि । यतोहि जीवननिर्वाहाय ये ये पदार्थाः प्रतिदिनमस्माभिर्भक्ष्यन्ते तेषु सारेण रसोऽभिनिर्वर्त्यते, रसाच्च रुधिरं, रुधिरात्सारभागो मांसं, तस्मान्मेदः मेदसोऽस्थि, ततो मज्जा, तस्माच्च सारतमं वीर्यमुत्पद्यतेऽतः सिद्धमेतत् यत वीर्यमिदं सर्वेषां शारीरिकाणां धातूनां सारभूतमिति ।

शुक्रस्य स्थानम् ।

पयसि यथा घृतं सर्वावयवेषु व्याप्तमेवमेतद्वीर्यम् शरीरे । आपादमस्तकं यत्र यत्र सन्ति अस्थिमज्जामेदःप्रभृतयः सर्वत्र तत्र तत्र सर्वेषामन्तः प्रविष्टमस्ति वीर्यं, नतु कस्मिंश्चिदेकस्मिन्नेव स्थाने ।

तथा च कुतश्चिदङ्गादस्थि पाते जाते तदङ्गमात्रं हानिं सहते तदङ्ग मात्रसम्बद्धत्वादस्थ्नः, एवं सर्वाङ्ग सम्बद्धस्य वीर्यस्य निःसृतौ सर्वमप्यङ्गं हानिं सहत इत्यत्र नास्ति कस्याऽपि संशय लेशः यदि सिद्धमेतत् यन्नाम उपकारिणि वीर्ये निःसृते सर्वमप्यङ्गं हानिं सहत इति, तर्हि तस्य विधिवद्रक्षणं न नाम भाविनी मूर्खतां विहायान्यदवगाहते । पंच विंशति वर्ष परिमितं वयो यावदिदं वीर्यं सम्बधते, चतुश्चत्वारिंशत् वर्षपरिमितं वयो यावच्च सुदृढं भवति परिपाक श्चानुभवति । ततोऽन्तरं तु भोजनादि द्वारा आत्मलाभं विदधत्क्लिदं स्वपनादि द्वारा बहिर्निस्सरतीति सिद्धमेतत् यत् स्वभावतश्चतु श्चत्वारिंशत् वर्षाणिवर्ततेऽखण्ड ब्रह्मचर्यस्य सुमहती आवश्यकतेति । अतोगार्हस्थ्यं प्रवेष्टुं चत्वारिंशत्तम एवाब्दः प्रशस्ततमः। तावत्पर्यन्तं ब्रह्मचर्यं शरीरं दृढीकरोति बुद्धिं वर्धयति, बलञ्चासदृशं करोति । असकृत् क्लिदमयोऽचामोयत्सारमयं वीर्य मेतत् सर्वावयवव्याप्त्या शरीरमधितिष्ठतीति । यथाचेदं न शरीरात् स्खलिष्यति तथा अधिकाधिकं वीर्यमस्मच्छरीरेषु व्याप्तिं लप्स्यते, तथा चास्माकीनं शरीरं सारमयं, सुपुष्टं, बलशालि, सुदृढं च भविष्यति, यतोहि न वीर्यादतिरिक्तं किमपि पदार्थजातं सुदृढं भवतीति प्राचीनैरर्वाचीनैश्च तत्वविद्भिरसकृन्निर्णीतम् । चतुश्चत्वारिंशदब्द परिमितामवस्थां सुखमनुभूय अनन्तरं गार्हस्थ्यप्रवेशेन सांसारिकेषु व्यवहारेषु पूर्णतया सफलतामधिगन्तु मङ्गानां यावती दृढता पेक्ष्यते तावत्याश्चबलशालिताया अपेक्षेन्द्रियाणां वशीकृत्यते, यावती च मननशक्तिस्तत्र तदेष्यते, तदिदं सर्वं सुलभं किल चतुश्चत्वारिंशद्वर्षपरिमितं वयो ब्रह्मचर्यमधीयानस्य । अनायासेन च सिद्ध्यन्ति ततो लौकिकानि कार्याणि, शरीरं शोभते, बुद्धिर्मननादिषु परिस्फुरति, समाविशति च नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभाऽप्रतिमा, किंबहुना शरीरेषु दार्ढ्यं वाक्षु ओजस्विता, नेत्रेषु ज्योतिः, मुखे प्रस्फूर्तिः, विचारे सहजगभीरता, कर्तव्यसम्पादने दक्षता, चेतसि कोऽपि उत्साहः, सर्वमिदं प्रतिपलमाभ्राजते यथार्थ ब्रह्मचारिणः । तस्यैव किलाङ्ग ! सर्वतः सुखं जीवनं मनुजजीवनपदमवगाहते । तस्यैव च मनोरथा न केवलं मनसोरथा भवन्ति अपितु त्वरितं सफला भवन्ति । स एव च व्याधिभिर्विरहितोदीर्घमायुर्लभते ।

केचिन्मतिमन्तः पञ्च विंशति वर्षपरिमितं वयो यावत् ब्रह्मचर्यं चरित्वा द्वात्रिंशद्वर्षपरिमितमायुश्च ततो वीर्यपुष्टिमुररीकृत्य तदनन्तरं गृहस्थाश्रमे प्रवेशमुपदिशन्ति, वीर्येऽपुष्टे सति गृहस्थाश्रम प्रवेशेनालघीयसी हानिर्भवतीत्यपिनिश्चलः सिद्धान्तः। तृतीयोऽयं समयो ब्रह्मचर्यपालनस्य यन्नाम पंचविंशतिवर्षाणि। केनाऽपि प्रकारेणैतावतिकाले वीर्यस्खलनं महतीं हानिं जनयति यतोह्येतावान्कालो वीर्यस्य वृद्धे र्निर्धारितः अनएवास्मात्प्रागवीर्यस्य तस्य स्खलितैर्वृद्धिरप्यरुध्यतेतरां, यतो जीवने महती हानिः संजायते। अतएव पंचविंशतिवर्षाणि विधिवत् ब्रह्मचर्यसेवनं परमं वर्तनं मनुष्य मात्रस्य कर्तव्यम्। प्राचीनेऽपि समये प्रचलितेयंरीतिर्यन्नाम पञ्चविंशति वर्षाणि आयुषः ब्रह्मचर्यधारणं नाम, सम्भवेतु चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि पुरुषा ब्रह्मचर्यं सिषेविरे, केचित्तु आजन्मब्रह्मचर्यं चरन्तः सुखेन ब्रह्मपदमवापुः। यावत्तं कालं पुरुषाणीति सेनामाश्रयन्त यावच्च भारतीया ब्रह्मचर्यमिदं सर्वस्वतया स्वीचक्रुः, तावत् काऽपि सा वीरता तानाश्रयत्। ननु किमद्य लौकिकं तेषां सहजसाध्यमभूतं, काऽपि सा ऽभिनव स्फुरित शालिनीमनिस्तेषांचकितचकित चकारभूमण्डलम्। ननु-वाचामधिपतिमपि तिरश्चक्रुर्ज्ञान विज्ञानमहिम्नेति किं नाम तं नास्त्याश्चर्यास्पदम्। ननु भोः! यादृशान्यमानुष्याणि कर्माणि ब्रह्मचर्यमहिम्ना प्राचीना असाधयन् तानि भावं भावं विस्मयस्तिमितामनुजलोको ऽधरदत्ताङ्गुलिर्भवति—अथवा भोः! न सम्प्रतिकलोकावलोकित लोकदशः श्रद्धत्ते तराम्। असहायोऽपिरामचन्द्रो युगपदेव चतुर्दश सहस्राणि रक्षसामुदमूलयदिति को नाम श्रद्धत्तेतं प्रति? एकाको रामः परशुधारीत्रिःसप्तकृत्वो निःक्षत्रियां महीं व्यधादिति को नाम साम्प्रतिको बलवानपि अनुमातं प्रभवेत्? स्वैकावलम्बो-हनुमान् सलीलाम्भोधिसलिलमुल्लङ्घ्य,पश्यतामगणनीयानां रक्षसां लंकां भस्मी चकार न च नाम वीर्यवन्तोऽपिराक्षसाः स्वबलमनागपि दर्शयामासुरिति निदर्शनं किं नाम नास्ति ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायाः। स किलमध्यमः पाण्डवो भीमो गगनेकन्दुकवद्धस्तिनो भ्रामयामासेति। स भीष्मो ऽखण्ड ब्रह्मचारी, सचार्जुनो ऽसंख्येयान महारथिनः सेनाश्वयुद्धायाहूयजिगायेति, निःसहायश्च स कुमारोऽभिमन्युर्वीरपालितं चक्रव्यूहं बिभेदेति, सहस्रवत्सराणि महर्षीणामायुंषीति।

किं बहुना एवमसंख्येयान्युदाहरणानि सन्ति ब्रह्मचर्यमहिम्नाम्। यानि निर्वीर्यैः साम्प्रतिकैरुन्मत्तप्रलपितवदुपेक्ष्यन्ते। येतु ब्रह्मचर्यस्य-महिमानं परिचिन्वन्ति त एवाङ्ग। निदर्शनान्यमूनि नैकपद एवप्रलपितत्वेनस्वीकुर्वन्ति। सहस्रेभ्योऽब्देभ्योयैर्ब्रह्मचर्य सेवनं परित्यक्तं यतः प्रतिपल मस्मानाश्रयत् सानिर्बलता साम्प्रतं यस्या इयान् प्रसरोऽस्मासु संजातो यत्र वयं वीर्यवतां तानि तानि असाधारणानि कर्माण्यपि स्वबुद्धौ धारयितु प्रभवामः। न तु तथाऽपि तत्राश्रद्धानाऽस्माकं कर्तव्यं तादृश्येव तेषां वीरताऽऽसीत्। सभ्यमहाभागाः! तदेवतेषामासीदन्नं यदस्माकं, तस्यैवदेशस्य जलेनवायुना च ते परिवर्द्धिता, यैर्वयमेधामहे। तत्किं कारणं तेषां तादृशी काप्यलौकिकी वीरता, अस्माकं चैतादृशीदीनदशा? ब्रह्मचर्यस्या सेवनमेवास्माकं किलास्यां दशायां कारणमिति युक्तमुत्पश्यामः। कुत्र तावत्तेषामष्टचत्वारिंशद्वर्षपरिमितं वयो ब्रह्मचर्यस्य सुसेवनम् कुत्र चास्माकं द्वादशे त्रयोदशेवाऽब्दे वयसि पाणिग्रहणम्? सभ्याः! यदि तत्र तत्र तेषां कथासु न विश्वस्यते तर्हि साम्प्रतिकाएववीराः वीरताकारणं प्रष्टव्याः। ब्रह्मचर्यमेव च तादृशवीरता कारणमिति [illegible] कारणत्वेन निर्दिश्यते वीरैः। ननु स कोऽपि तादृशएव महिमा, यत्प्रसादान्मनुष्यः सिंहपदवीं लभते। यथायथं वीर्यरक्षां विधायपंचविंशतिवर्षाणि पुरुषोऽतिष्ठेत् तर्हि अमेयं तदीयं बलं वीर्यं च न जन्मसहस्रैरपि वाग्गोचरीकर्तुं पारयेम। स एवकिलपुरुषः, साम्प्रतमपिपूर्वं निदर्शितेष्वन्यतमनिदर्शनको भवितु मर्हतीत्यपि वयं सघण्टाघोषंब्रूमः। हन्त हन्त! तादृशममेयममूल्यं वीर्यं सम्प्रति वयं वृथैवगमयामः। स्वकीयञ्च जीवनं दुःखाम्बुधौनिपातयामः।

मनोऽस्माकं शरीरनगरस्याधिपतिः, वीर्यञ्च तस्य शक्तिरिन्द्रियाणि शरीरं च तस्मिन्नगरे तदाधिपत्ये निवसन्त्य प्रजाः, दुःखकायरतालस्यदुर्बुद्धिनिर्बलतादयश्च शरीरनगरस्थद्रव्यापहारका लुण्ठकाः। विषयाशक्तिश्च सेयं वेश्यया दुःखादीनां लुण्ठकानां विशेषतः सहायतां करोति। उत्सहते चेयं सर्वदा राजानं मनसं मोहयितुम् कृतार्था च तस्याधिपतेः शक्तिं (वीर्यं) अपहरति। ततश्च निःशक्तिर्भवति राजा। क्षीणशक्तौ च राजनि दुःखनैर्बल्यादयो लुण्ठकाः प्राबल्यं भजन्ते, ततश्चाभिभूयराजानं त एवापहृत्य अनुपमां पौरुषकर्तव्यक-

पामसाधारणीं शरीरनगरश्रियं पीडयन्तितमां च इन्द्रियशरीरादिकां श्रेयसीं च प्रेयसीं च तदीयां प्रजाम्। पीड़िता च लुण्ठकैः साप्रजा न किलस्वधर्मं पूर्णतया परिपालयितु क्षमाः। यथा हस्तौ न कर्तव्येपि परायणौ भवतः, पादौ न चलितु शक्तौ, कर्णौ न श्रोतु प्रभवतः, न च चक्षुषी द्रष्टुं पारयतः, मनश्च नैर्वल्यमाश्रयति, बुद्धिः शैथिल्यमाश्रयति, न च वीर्यं कार्येषु प्रभवति, सुखं विनश्यति, साऽपिकिलजगन्मोहिनी सुन्दरता न नामदर्शनक्षमा भवति। किं वहुना सुरम्यमिदं नगरमेवसर्वतो नष्टभ्रष्टं श्मशानभूमिपदवाच्यतां चाश्रयति। नामशेषं च किलसहसैव पञ्चसु भूतेषु विलीयते।

यद्यप्यास्माकीनेषु शरीरेषु विद्यते मूलभूतकाशक्तिः, यत् प्रसादात् हस्तौ कार्यं कुरुतः पादौ चलतः कर्णौ शृणुतः चक्षुषीदर्शने प्रभवतः तथापि सेयं शक्तिर्नस्वावलम्बना किन्तु वीर्यशक्त्यैव विद्योतते, अतएव वीर्यवान् पुरुष एव शक्तिमान् इत्युच्यते लोकैः। अति सामीप्यतया हि वीर्यमेव शक्ति व्यपदेशं भजते, न तु तयोः सर्वथैक्यम्। योयः यावद्वीर्यशाली स तावच्छक्तिशाली। यस्य च शरीरे न वीर्यं, न स कदापि शक्तिमान् भवितु मर्हति। अतएव नपुंसकमुद्दिश्य न कदापीदं श्रुतं यदनेन नपुंसकमहोदयेन इदं शक्तिमत्कार्यं साधितमिति। नापीदमपि कुतोऽपि श्रवसो रतिथीकृतं यदनेन विषयासक्तिमतेदं वीरत्वमादर्शितमिति। वस्तुतः संसारे यैर्यैः शक्तिसाध्यं कार्यमाचरितम्, ये ये दुःखबोधानि शास्त्राणि रचितवन्तः यैः समरेषु विषयो लब्धः यै चामानुष्यं कृत्यं सम्पाद्यामरपुरीमसेविषत, येषामलौकिकवैभवशालिनी जीवनवृत्तान्तावलीः श्रवोभ्यां पायं पायं चकित चकितायते क्षणस्तिमितं चेतः। तेषां किल विजयते ब्रह्मचर्य्यस्यैव महिमा, यत् प्रसादात्तेषामसाधारण्यं प्रथितम्। बलवन्तं रिपुं विजेतुं ब्रह्मचर्यमेव ब्रह्मास्त्रम्। कठिनतमानां शास्त्राणां रहस्यं ज्ञातुं विद्वन्मण्डलीं वादेषु विजेतुं ब्रह्मचर्यमेव परमवलम्बो नृणाम् यद्यर्जुनो द्वादशवर्षाणि वने निवासं कृत्वा नाधारयिष्यत् ब्रह्मचर्यं कथं नाम महाबलं कर्णं जेतुं प्राभविष्यत्। यदिनाम लक्ष्मणश्चतुर्दशवर्षाणि ब्रह्मचर्य्यावलम्बनावसरं नाग्रहीष्यत् कथं नामेन्द्रजितं मेघनादं समरेऽहनिष्यत्। शिवाजी महोदयो ब्रह्मचर्य्यप्रभावेणैव भारतप्रथितान् यवनान् युधिपरास्तान् कृतवान् भारतोद्धर्ता

स किल प्रातः स्मरणीयः शङ्कराचार्य्यस्वामी ब्रह्मचर्य्यप्रभावेणैव वैदिकं धर्मं प्रथितवान्। किं बहुना, किं तद्वस्तु, यद्वीर्यरक्षया न दृढताञ्च स्थिरताञ्च लभते? अस्थ्यपि ब्रह्मचारिणस्तथादृढं भवति यथा वज्रमप्यधरी क्रियते दृढतमतया च मांसस्य न निशिताऽपि करवालधारा व्यापारं विधातु तत्र पारयति। स्पष्टमस्ति किलेतिहासपुराणादिषु बहुश एवं प्रतिपादितं, यद् अनेन वीरेण सब्रह्मचर्य्यतपसा ईदृशी सिद्धिरवाप्ता यत् 'न शस्त्रं तदीये शरीरे प्रहर्त्तुं पारयति' इति। नूनं ब्रह्मचर्य्यस्यैवायं महिमेति विद्वांसो विचारयन्तु। ब्रह्मचर्य्यमहिम्ना हि सुदृढे तदीये शरीरे न शस्त्रमात्मानं दर्शयितुं क्षमते, न किलाङ्ग। यथाबलवतोयूनः शरीरे निर्बलेन बालेन निक्षिप्तमस्त्रं किमपि प्रहर्त्तुं नक्षमते। एव मूर्ध्वरेतसायेन स्वशरीरं अतिशक्तिमद्विहितम्। तदीय शक्तिमति शरीरे सामान्यपुरुषैः प्रक्षिप्तमपिशस्त्रं न किमपि प्रहुर्त्तुं प्रभवति, लोकसिद्धमिदं किन्नतत् निर्बलो यत्काष्ठ दिवसं परिश्रम्य छिनत्तितमेव किलाङ्ग! बलवान् क्षणेनोच्छिनत्तीति। ननु तदेवकाष्ठम्, परं न सा शक्तिर्निर्बले, या सबले। ब्रह्मचर्य्यस्येदृशीं विभावावलीं दृष्ट्वा वालिना तत्प्रभावेण स्वशरीरं तथादृढीकृतम् यथा स एव तमभिजेतुमपारयत्। यः बाणेनैकेन सप्ततालाञ्छेत्तुं पारयति। इन्द्रैकजय्येन वृत्रेणापि अस्य ब्रह्मचर्य्यस्य महिम्ना साशक्तिरधिगता यतः किञ्चिदपि शस्त्रं तदीये शरीरे प्रहर्त्तुं न प्राभवत्। यदा च स निहतः तदाऽस्थ्ना ब्रह्मचारिणः। तन्मारणार्थं ब्रह्मचारिणोऽस्थि गवेषितम्, यश्चिमिरो न शस्त्रेण तस्य वधः सम्पादितः। दृश्यतामाश्चर्य्यमुभयोर्ब्रह्मचर्यम्। एकस्य शरीरं लोहकर्कशञ्चेत् अपरस्याऽस्थ्येव वज्रं तिरस्करोति। नात्र काप्यतिशयोक्तिः। प्राचीने किलकाले ब्रह्मचर्य्यं चरित्वा तादृशीं शक्तिमधिजग्मुः किललोकाः। तत्प्रसादादेकाकिनापिदिशोविजिताः। ननुस्त्रीभिर्बालैश्चाश्चर्यान्वितानि कार्याणि साधितानि, पुरुषाणान्तु कैवकथा। महाराजदशरथस्य रथाक्षकीलं रथात्समरे विगलितम्। सहायभूतया कैकेय्या स्वकीयाङ्गुलिस्तत्स्थाने विनियोजिता, अन्यथा रथस्य पतनं भवेत् महाराजश्च पराजीयेत्। परन्तु कैकेयी कार्येण एवं नाभूत्, महाराज दशरथ एव विजयभागभूत् सहजशीलतया कैकय्या। अवलोक्यतां स्फारितनेत्रं किल कैकेय्या वीरता। आस्तां प्राचीनान्युदाहरणानि। ननुवयं यदी-

याः प्रजा, तदीये साम्राज्येन सूर्योऽस्तमेति यदीयं बुद्धिवैभवं आश्चर्य्यान्वितान् करोति लोकान्, यदीयं कला कौशलं परिमोहयति सहसैव प्राणिनः। ननु भोः। चकित चकिताये ते चक्षुषी विलोकयतां दर्श दर्श यदीयं चमत्कार कौतुकम् ते किमिति तादृशीं मतिं लब्धवन्तः? किमिति च तादृशमुत्साहं समाश्रयन्ते! अवधीयतां तावत्। सम्प्रति भारतोद्धारस्य विजयवैजयन्तींहस्ते गृहीत्वा देशे देशे परिभ्रमन्तो वहवः कपटोपदेशकाः व्याचक्षते यत् विविधानि वस्त्राणि योरोपीयाः परिदधते मञ्चोपरिनिधाय भोजनं छुरिकया कर्त्तित्वा च भक्षयन्ति, श्राद्धं न कुर्वन्ति, विधवोद्वाहं स्वीकुर्वन्ति, मूर्त्तिपूजातो दूरे भवन्ति, अतएव त एतादृश गुणसम्पन्ना इति, तेषामिदमनवधाननिवन्धनम्। न किलाङ्ग। तथा तदुन्नतिर्जाता। न चवयं तदीयोन्नतितत्त्वं मनसा विचारयामः, केवलं वाह्यमनुकुर्मः। न चानुकारकोऽनुकार्य पदवीं लभते न खलु महर्षिमनुकुर्वन् महर्षिर्भवति, न च ते राचरणैस्तेषामुन्नतिर्जाता। तेषामुन्नतिर्यैर्गुणैर्जाता तेषु ब्रह्मचर्य्यमेव मूल कारणम्। सर्वे जानन्ति किलते पञ्चविंशतिवर्षपर्य्यन्तं नोद्वाहं कुर्वन्तीति, ब्रह्मचर्य्यं चरन्तीति। अतएवते तथा वलवन्तउत्साहवन्तश्च भवन्ति उन्नतये येषां गुणाना मावश्यकतास्ति तेषांमूल कारणं ब्रह्मचर्य्यमेव। ततएव ते स्वयमाविर्भवन्ति यतोहि ब्रह्मचर्य्येणैव पुरुषः वलवांश्च, बुद्धिमांश्च भवति। तथाविधश्च पुरुषः स्वार्थं परित्यजति, परार्थञ्च सम्पादयति। किञ्चयो ब्रह्मचर्य्यं चरति सोऽखण्ड ब्रह्मचारी न कदाचिदपि पारस्परिकं विरोधं जनयति। विषयासक्तिर्हि कलह कारणतया निर्दिश्यते पण्डितैः, अतएव यस्मिन् बुद्धिश्च वलञ्च स्वार्थत्यागश्चेति त्रीणि रत्नातिविद्यन्ते तत्रैव प्रतिष्ठिता भवतिराजलक्ष्मीः। वर्त्तन्ते च योरोपीयेषुते ते गुणाः ये ब्रह्मचर्य्येण स्वयमाविर्भवन्ति, तर्हि आश्चर्य्यमेव किम्, यत् तदीय हस्ते राजलक्ष्मी स्यात्? ब्रह्मचर्य्यं हि शास्त्रकारैर्वहुधा प्रशंसितम्। ब्रह्मचर्य्य मेव तैः सर्वसिद्धीनां निदानत्वे निर्दिष्टम्। ऋषिभिरपि स्वार्थसाधनाय ब्रह्मचर्य्यं माश्रितम्। परित्यक्ते च ब्रह्मचर्य्ये न कश्चिदपि स्वार्थं साधयितुं प्रभवतीति नूनमवधानीयम्। अतएव सहस्रवर्षं तपस्यतामृषीणां तपोऽपि ब्रह्मचर्य्ये विनष्टे सति नाऽफलत्। वलवतां राज्ञां शक्तिरपि समूलनाशं विनष्टा।

अति चतुरोऽपि विद्यार्थी ब्रह्मचर्य्याभावे न च साफल्यं भजते। किम्बहुना, प्रत्येकस्य कार्यस्य साधनाय ब्रह्मचर्य्यमपेक्षते, बलञ्च बुद्धिश्च सहकारिणी कार्यसाधनाय। न च ते ब्रह्मचर्य्य मन्तरेण सिद्धा ब्रह्मचर्य्यस्य सर्वत्रोपकारिता। उत्तम मपि भोजनं न कामपि तस्तांशक्तिं जनयति यां शुक्र मण्डसं जनयति ब्रह्मचारिणः शरीरे। पूर्वजैः सम्यग्ज्ञात आसीदस्य महिमा, अतएव ते गृहस्थाश्रमाश्रयिणोऽपि ब्रह्मचर्य्यमचारिषुः। पुत्रलाभार्थमृतौ भार्यां गच्छन् गृहस्थोऽपि ब्रह्मचारी एव। प्राचीनकाले तथा भूता एव गृहस्था अभवन्। न स्वप्नेऽपि परकीयां योषितमकामयन्त। श्रूयते किलेतिहासेषु यथा कदाचित् लवः स्वप्रासादे शयनमकरोत्, स्वप्ने दृष्टवांश्च काञ्चित् सुन्दरी मेकां तल्प निकट स्थिताम्। यां दृष्ट्वा लव, श्चिन्ताव्याकुलोऽभवत्। सा त माह, यत् 'अहं अयोध्या नगरी' श्रीरामो नाम मद्भर्तुस्य विरहेण दुःखिनी अस्मि भवता यथोचितं पालनीयेति। स्वप्नेऽपि येषां ब्रह्मचर्य्यं प्रतिष्ठितम् तेषामुचितमेव धर्मात्मत्वं बलवत्वं यशस्वित्वञ्च। यत्प्रसादाद्वयो बलं बुद्धिश्च सहसा लभामहे, यन्महिम्ना च सांसारिक दुःख नदीं सुगमतया तरामः। यदीय वैभवेन राज्यमुपभोक्तुं प्रभवामः, किम्बहुना, स्वर्ग मपि मुक्ति मपि यत्प्रभावेण लब्धु शक्नुमः, तस्य सर्वसुखस्य ब्रह्मचर्य्यस्य अस्माभिः कीदृशीदशा कृता? हन्त, परं शोचनीयं यत् यदवस्थाया वीर्यस्य संचार एव न भवति याचावस्था बलस्य बुद्धेश्च उपार्जनाय नियमिता तस्यामेव विवाहस्य कठिनया शृङ्खलया बद्धा भवामः। यस्या मवस्थायां संसारस्य कापि चिन्ता नाश्रयणीया, तस्यामेव गृहस्थस्य कठिनतमया चिन्तया चेतो व्याकुलीक्रियेमहि। क स विद्या विचार समयः, क च गृहस्थ चिन्तया कलुषी क्रियते। हन्त विकासोन्मुखी कलिका व्यापार्यते कार्येषु, कुतो वराक्याः विकासः सौरभं च स्यात्। विद्यां बलमुत्साहञ्च विकासयितुं यः कालो विधात्रैव निर्दिष्टः तस्मिन् यदि तथा तेषामवसरो न स्यात् यथा च पुष्पितुञ्च फलितु प्रभवेयुः तर्हि कथं मनुष्याः बुद्धिमन्तो बलवन्तश्च भवेयुः। हा परं दुःखम्! तेषामखण्डब्रह्मचारिणां महर्षीणां सन्ततयोवयं, यैः करामलकीकृत्य ब्रह्मचर्य्य तत्त्वं यत्नेन परिपाल्य तथा तथा वस्तूनि-आविष्कृतानि यथा यानवलोक्य साम्प्रतिका विद्वांसोऽपि

चकितायन्ते, ननु ब्रह्मचर्य्यं यथावच्चरितु मुत्सहामहे, अपरमिदंभव लोक्यतां दैवविलसितम्। अद्य बाल उत्पद्यतेश्वः परश्वोवा माता-पितरौ तदीयोद्वाहं चिन्तयन्ति, नत्यक्तं यावत्स्तन्यपानम् तावदेव विवाह विधिः। शिव शिव !! महच्छोकस्थानम्। द्वादशे त्रयोदशे-ऽपि वर्षे विवाहं निन्दन्ति वीर्यतत्त्वज्ञाः, नकिल तस्मिन्नपि वयसि वीर्यं सञ्चरति। परन्तु सम्प्रति तद्विरुद्धमेव दृश्यते। षोडश वर्ष वयस्कः पुमान् द्वादश वर्ष वयस्का च स्त्री माता पितृ पदवीं लभेते। ननु तर्हि तस्मिन्वयसि वीर्य सञ्चाराभावात्कथं सन्तानोत्पत्तिरिति-चेत्, उच्यते, रात्रिन्दिवं कुसङ्गत्या अहर्दिवं विषयेषु प्रसक्तया प्रतिदिनं स्त्रीभिः संभाषणेन स्त्रीयोगेनापि शरीरे प्रादुर्भवति काचि दुष्णता, यत्प्रभावेण असमय एव वीर्यं पक्कमिव भवतीति।

अग्निसंयोगेनाऽपक्कमपि फलं यथा सहसैव परिपाकं लभते च्यवेत च, तथैव स्त्रिया संयोगेन परिपाकदशामप्राप्तमपि वीर्यं परिपक्कमिव स्वस्थानाच् च्यवेत। परन्तु फलमस्य सुदारुणं भवति। प्रथमन्तु ततो गर्भस्थितिरेव दुर्घटा, गर्भस्थितावपि पतनन्तस्य दु-र्निवारम्, कथञ्चिदपतितेऽपि गर्भे बालो जनित्वा प्रध्वंसते, अमृतोपि ननु आजन्मदुर्बलो निर्वीर्यश्च बालिशश्च परमं दुःखमनुभवति। अवधीयतामत्र विषये भारतीयानामस्माकं परिचलन सरणिः, बाला-नामुद्वाहं प्रचार्याऽस्माभिरियती स्वकीया दुर्दशा समाहूता। मनाक् दीयतां पञ्चविंशति वयः प्राप्तस्य यूनो मुखे दृष्टिः, ननु यदीया वदनशोभा कुन्दकलिका चमत्कृतिमप्यधरीकर्तुमुचिता, यदीययोः कपोलयोर्लालिमा न्यक्कर्तुमुचितः नवकलिका लौहित्यमशोकस्य, यस्य तेजस्तेजोराशेरपि तेजोनिचयं तिरस्कर्तु समुचितम् यस्यच बलस्य मृगपतेर्बलात् कथमपि न्यूनतावगाहनमनुचितम्। हन्त हन्त ब्रह्मचर्यापरिपालनात् तस्य यूनो मुखे न लालिमा किन्तु दीनता कालिमा प्रतिपलम् विराजते।

न किल तस्य सर्वाङ्ग भरितं सुमनोहरमङ्गमपि तु स्फुरति साभिनिवेशं तत्र जरद्भावः, शक्यन्ते तस्याऽस्थीनि निःशेषतो गण-यितुम्। किं बहुना, यथा सम्प्राप्ते दुर्भिक्षे दरिद्राणां दीनदीना मूर्त्तय इतस्ततो भ्रमन्ति तथैव सुभिक्षेऽपि परिदृश्यन्ते धनिनामपि बाल-विवाहहितानां महाशयानां प्रत्यहं मूर्त्तयः। यः कश्चित्पृच्छति सम्प्रति

भारत मित्र और सम्मेलन।

आयुर्वेदका वर्तमान आन्दोलन देखकर मनमें अनेक भाव उठते हैं। पहला भाव यह है कि, जितनी राष्ट्रीय चहलपहल इस समय भारतवर्षमें हो रही है उसमें आयुर्वेदकी चहलपहल भी किसीसे कम महत्वकी नहीं है, आयुर्वेदका आन्दोलन पूर्ण राष्ट्रीय है। जहां इसका सम्बन्ध एक ओर भारतवर्षकी प्राचीन सभ्यता और विज्ञानसे (रसायन आदि) है, वहां दूसरी ओर इसका सम्बन्ध भारतवर्षकी वर्तमान साम्पत्तिक दशासे भी है। यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि, डाक्टरी चिकित्साद्वारा भारतका करोड़ों रुपया विलायत जाता है। ऐसी दशामें यदि आयुर्वेदके वर्तमान आन्दोलनद्वारा देशी वनस्पतियों, काष्ठौषधियों, रसादिकका पुनरुद्धार हो जायगा तो भारतकी वर्तमान साम्पत्तिक स्थिति पर इसका बहुत ही उत्तम प्रभाव पड़ेगा।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी तरह आयुर्वेद सम्मेलन या आयुर्वेद-महामण्डलकी ओरसे आयुर्वेदकी परीक्षाएं भी प्रतिवर्ष होती हैं। इस वर्ष कुल १३४ विद्यार्थी परीक्षाओंमें बैठ थे, जिनमें ८ आचार्यमें, ४१ विशारदमें और १३ वैद्यपरीक्षामें उत्तीर्ण हुए। आयुर्वेदाचार्य परीक्षामें प्रथम आनेके कारण फतहगढ़के श्रीयुक्त शिवदर्शन वाजपेयीको इस वर्ष स्वर्णपदक मिला। परीक्षाका क्रम यदि इसी प्रकार उत्तरोत्तर उन्नत होता जायगा तो महामण्डलके द्वारा देशमें सुयोग्य वैद्य भी तैयार हो सकेंगे। परन्तु केवल परीक्षा पास करके ही वैद्यकके धन्धे में लग जानेसे देशको विशेष लाभ न होगा। किन्तु परीक्षा पास करनेके बाद किसी वृद्ध अनुभवी सद्वैद्यकी सेवामें कुछ काल व्यतीत करनेकी आवश्यकता है।

सरकारकी ओरसे आयुर्वेदको तथा देशी वैद्योंको कोई उत्तेजना तो कभी मिलती नहीं; किन्तु अङ्गरेज़ डाक्टरोंकी ओरसे देशी वैद्यकको दबानेका प्रयत्न किया जाता है और पश्चिमी शिक्षा पाये हुए, विदेशी औषधियोंका प्रचार करनेवाले डाक्टरोंको, देशी वैद्योंके मुकाबलेमें बढ़ानेका सरकारकी ओरसे बराबर प्रयत्न किया जाता है। इस विरोधी आन्दोलनका भी दबानेमें यह सम्मेलन, आशा है, आगे चलकर सफल होगा। इसमें आनन्दकी बात यह है कि बड़े बड़े सम्माननीय और पश्चिमी शिक्षा पाये हुए डाक्टर भी आयुर्वेदसे सहानुभूति रख

कर उसका गौरव स्थापित करनेके लिये इस सम्मेलनमें योग देते हैं। कुछ स्वार्थी और चापलूस तथा सरकारी नौकर डाकृर ऐसे हैं कि जो आयुर्वेदकी हंसी उड़ाते हैं; परन्तु ज्यों ज्यों इस सम्मेलनका आन्दोलन बढ़ता जायगा त्यों त्यों, आशा है, ऐसे डाकृरोंकी संख्या घटती जायगी।

प्रान्तीय एकता और राष्ट्रीय भाषाकी दृष्टिसे भी यह सम्मेलन बड़ा अच्छा कार्य कर रहाहै—किंबहुना यह कहना चाहिये कि देश-में जितनी सभाएं और सम्मेलन होते हों उनमें यह, इस विषयमें, सबसे श्रेष्ठ है। मद्रास, बङ्गाल, पञ्जाब, गुजरात, महाराष्ट्र और हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्त—इन सब प्रान्तोंके वैद्य लोग एक स्थानपर एकत्र होकर परस्परके विचारोंसे परिचित होते हैं। इस वर्षके सम्मेलनमें बङ्गाल, गुजरात और महाराष्ट्रके वैद्योंने तो हिन्दीमें भाषण किये ही, किन्तु कई मद्रासियोंने भी हिन्दीमें भाषण किया। एक मद्रासी डाकृर (डा० लक्ष्मीपतिजी) सिवा अपनी मातृभाषा और अङ्गरेज़ीको छोड़कर, संस्कृत और हिन्दी नहीं समझ सकते थे, सो वे महाशय देशी भाषाओंके भाषणोंसे कुछ भी लाभ नहीं उठा सके, इसपर उन्हें बड़ा खेद रहा और अन्तमें जब इन पंक्तियोंका लेखक उनसे मिला तब उन्होंने प्रकट किया कि "आगामी वर्षके सम्मेलनमें देखि-येगा, मैं हिन्दीमें स्वयं भाषण करूंगा।" इस प्रकार इस सम्मेलनके द्वारा मद्रासी वैद्य और डाकृरोंमें भी हिन्दी प्रेमका बीज बोया जा रहा है। राष्ट्रीय भाषा हिन्दीके अतिरिक्त संस्कृतके पुनरुज्जीवन होने-में भी इस सम्मेलनसे सहायता मिलती है।

वैद्यक सम्मेलनके साथ प्रदर्शनीका जो क्रम जारी किया गया है उससे भी बहुत लाभ होगा और आयुर्वेदसाहित्यका पुनरुद्धार होगा।

अगले वर्षके लिये पञ्जाबकी ओरसे श्रीयुक्त ठाकुरदत्तजी शर्मा वैद्यने सम्मेलनको निमन्त्रित किया है। आशा है कि, यह निमन्त्रण हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकासा ही न होगा और पञ्जाबके वैद्य अभी-से, अगले वर्ष सम्मेलनको सफल बनानेके लिये आन्दोलन प्रारम्भ करेंगे।

[भारत मित्र, १२ मार्च सन् १९१७]

पं० सुदर्शनाचार्य बी० ए०, कर्नलगञ्ज, प्रयागने 'सुदर्शन प्रेस' में मुद्रित किया और जगन्नाथप्रसाद शुक्ल वैद्य ने प्रयागके दारागञ्जसे प्रकाशित किया।